क्रांतिकारी ट्रेड यूनियन की ज़रूरत क्यों?

शहीद नियोगी विचार श्रृंखला क्र. 2

शहीद नियोगी विचार श्रृंखला क्र. 2
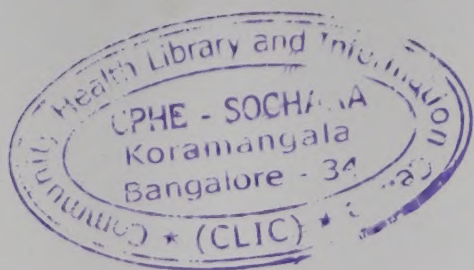
क्रांतिकारी ट्रेड यूनियन की ज़रूरत क्यों?

प्रस्तुति

शहीद शंकर गुहा नियोगी पुस्तकालय एवं सांस्कृतिक केंद्र, भोपाल
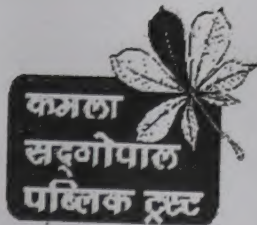
क्रांतिकारी ट्रेड यूनियन की ज़रूरत क्यों?

एक लोकतांत्रिक, समतामूलक, न्यायशील, धर्मनिरपेक्ष और प्रबुद्ध भारत के नवनिर्माण के लिए शहीद शंकर गुहा नियोगी की 28 सितंबर 1991 को हुई शहादत को देश की नई पीढ़ी को पेश करती हुई यह पुस्तक 'छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा' के लिए राजकमल प्रकाशन, दिल्ली द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'संघर्ष और निर्माण', 1993, कुल पृ. 681 (संपादन - अनिल सद्गोपाल एवं श्याम बहादुर नम्र) से साभार उद्धरित है।

आवरण - कनक शशि

पहला संस्करण - जनवरी 2017

प्रतियां - 1,000

प्रकाशक - कमला सद्गोपाल पब्लिक ट्रस्ट
ई-8/29 सहकार नगर,
भोपाल 462 039

मुद्रक - राजकमल ऑफ़सेट प्रिंटर्स
15-सी, सेक्टर-जी,
जे. के. रोड, गोविंदपुरा
भोपाल 462 021

सहयोग राशि – पचपन रुपए

विषयसूची

समर्पण

सदियों से उत्पीड़ित आदिवासियों, दलितों व अन्य पिछड़े वर्गों की ज्ञान व उत्पादन की समृद्ध परंपराओं और कई जनभाषाओं के साहित्य से सिंचित छत्तीसगढ़ के मजदूर-किसानों व कारीगरों, खासकर महिलाओं व युवाओं, को समर्पित जिन्होंने अपने प्राकृतिक संसाधनों और धान के कटोरे को साम्राज्यवादी लूट, शोषण व दमन से मुक्त कराने के लिए वीर नारायण सिंह (1857) से लेकर आज तक बहादुराना संघर्ष ज़ारी रखा है।

वारिस तो संपत्ति वाले लोग खोजते हैं,

***लेकिन* आंदोलन में वारिस पूरी पीढ़ी होती है।**

- शंकर गुहा नियोगी

(12 सितंबर 1991, दिल्ली में पत्रकारों के साथ बातचीत)

शहीद शंकर गुहा नियोगी : जीवन की एक झलक[1]

18 सितंबर 1942 को हेरम्ब कुमार की पत्नी कल्याणी ने अविभाजित बंगाल के जिला दिनाजपुर के ग्राम बालूवाड़ी में धीरेश (बचपन का नाम) को जन्म दिया। . . . बाद में यह परिवार जमुनामुख आ गया, धीरेश की प्राथमिक शिक्षा यहीं पूरी हुई। आगे की पढाई के लिए उन्हें उनके ताऊ के पास, पश्चिम बंगाल के जिला बर्दवान में साकेतोरिया (दिशेरगढ़ में), आसनसोल के निकट भेज दिया गया। धीरेश ने छठवीं कक्षा से मैट्रिक तक की पढ़ाई वहीं रहकर की। यहां रहते हुए उन्होंने कविता लिखना शुरू किया व प्रकृति के प्रति उनका प्रेम भी यहीं मुखरित हुआ। उन्होंने यहीं 'बंगाल कोल' के मजदूरों की कमजोर आर्थिक स्थिति को नज़दीकी से जाना। शराब और जुआ किस प्रकार मजदूर के परिवार को और भी बेबस बना देता है, यह देखने का मौका भी उन्हें यहीं मिला। . . . उन्होंने महसूस किया कि समाज-व्यवस्था का आर्थिक-राजनीतिक ढांचा किस प्रकार एक गरीब मजबूर व्यक्ति को और अधिक गरीब तथा अमीर को और अधिक अमीर बनाता है। उन्होंने यहीं वर्गभेद को प्रत्यक्ष रूप से देखा, जाना और समझा।

इसी दौर में शंकर का परिचय पश्चिम बंगाल में उभर रहे जन आंदोलन से हुआ। आजादी के बाद के कांग्रेसी राज की नीतियों से गरीब मेहनतकश जनता के मोहभंग होने की शुरूआत हो चुकी थी। सन् 1961 में मां के देहांत के बाद वे अपने मामा के पास भिलाई (जिला दुर्ग, छत्तीसगढ़) चले आए। मामा ने उन्हें कोक ओवन प्लांट में अप्रेंटिस बनवा दिया। शंकर ने सन् 1962-1968 तक भिलाई स्टील प्लांट में काम किया। मजदूरों को संगठित करने की उनकी जुझारू शैली के कारण भिलाई स्टील मैनेजमेंट ने उन्हें काम से निकाल दिया। लेकिन शंकर ने छत्तीसगढ़ नहीं छोड़ा वह उनकी कर्मभूमि बन गई और अंतिम समय तक वे वहीं रहे।

---

[1]शहीद नियोगी विचार श्रृंखला क्र.1 पर आधारित।

मार्च-अप्रैल 1977, दल्ली राजहरा में भिलाई स्टील प्लांट की लौह अयस्क की बंधक खदानों के लगभग 20 हजार मजदूरों को नए सिरे से संगठित करके नियोगी ने एक क्रांतिकारी ट्रेड यूनियन का ऐतिहासिक प्रयोग शुरू किया। यह यूनियन सिर्फ आठ घंटों की नहीं वरन 24 घंटों की बन गई और इसका काम खदानों के उत्पादन से लेकर मजदूर बस्तियों की चौपालों और उनके घरों के चूल्हे-चौके तक पहुंच गया। इसी से संघर्ष और निर्माण के राजनीतिक दर्शन की शुरूआत हुई। इसके चलते यूनियन ने शहीद अस्पताल, शहीद स्कूल, शहीद गैरेज, शराबबंदी, अपने पर्यावरण की रक्षा और खदानों में अर्द्ध-मशीनीकरण की वैकल्पिक तकनालॉजी का सृजन किया। यूनियन के काम से छत्तीसगढ मुक्ति मोर्चा बना जिसके तहत खेत मजदूर, किसान और आदिवासी शामिल हुए और छत्तीसगढ़ के वैकल्पिक विकास का मॉडल खड़ा हुआ। सन् 1989-90 में भिलाई के औद्योगिक मजदूरों को संगठित करके उन्हें भी नए भारत के लिए नया छत्तीसगढ़ की धारा से जोड़ा।

27 सितंबर 1991 की रात को रायपुर से दो अक्तूबर की तैयारी बैठक से लौटकर नियोगी भिलाई के यूनियन आफिस में लेनिन की किताब (ट्रेड यूनियनों पर) पढ़ते-पढ़ते सो गए। 28 सितंबर 1991 को तड़के स्थानीय उद्योगपतियों के गुंडों द्वारा खुली खिड़की से उन पर छह गोलियां चलाई गईं।■

क) क्रांतिकारी ट्रेड यूनियन की ज़रूरत पर[2]

- शंकर गुहा नियोगी

नवंबर 1982 में अखिल भारतीय इस्पात मजदूर समन्वय समिति की बोकारो (झारखंड) में आयोजित बैठक के लिए तैयार किए गए नियोगी के बयान का एक अंश यहां उद्धरित है। - स.

''आज सारे देश में आंदोलन की बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही हैं और व्यवस्था की बुनियाद पर चरम आघात कर रही हैं। क्या ये लहरें व्यवस्था को ध्वस्त कर पाएंगी? या यह व्यवस्था आंदोलन को कुचल डालेगी? इसका निर्णय अभी होने को है। हमारा कहना है कि अगर लहरों की बागडोर सृष्टि के देवता उत्पादक वर्ग के हाथ में रहेगी, तो वर्तमान व्यवस्था ध्वस्त होगी और नई व्यवस्था की सृष्टि होगी। और अगर लहरों की बागडोर अनुत्पादक पूंजीपति वर्ग या निम्न पूंजीपति वर्ग के हाथ में रहेगी तो व्यवस्था बरकरार रहेगी। जनवाद ध्वस्त होगा, भूख की काली छाया देश में फैलती रहेगी एवं उत्पादक वर्ग कमजोर होता जाएगा।

उत्पादक वर्ग की स्थिति मजबूत करने के लिए ही क्रांतिकारी ट्रेड यूनियन की ज़रूरत है। उसी ज़रूरत की पूर्ति के लिए जगह-जगह वैज्ञानिक प्रयोग हो रहे हैं। हम भी छत्तीसगढ़ में कुछ प्रयोग कर रहे हैं।'' ■

---

[2]मूल पुस्तक से उद्धरित पृष्ठ संख्या : 275.

सितार के सात तार[3]

सात कंटीले तार -
अब तक छूता था मजदूर
जब कभी इन तारों को,
होता था लहूलुहान उसका शरीर।

अब वह बन गया
सितार के सात तार।
पैदा करेगा मजदूर आंदोलन
इन तारों से आवाज!

-शंकर गुहा नियोगी
दुर्ग जेल में, फरवरी-मार्च 1991
मूल हिंदी में

---

[3]मूल पुस्तक से उद्धरित पृष्ठ संख्या : 264.

खंड एक

विचारधारा का सवाल

शंकर गुहा नियोगी के दो आलेख

मार्क्सवाद के मूलसूत्र

लुटेरा राज खत्म करना है

मार्क्सवाद के मूलसूत्र[4]

शंकर गुहा नियोगी ने यह लेख सन् 1971 के आसपास एक लोकप्रिय बंगला पुस्तिका से प्रेरित होकर लिखा था। इसका उन्हीं के द्वारा संशोधित रूप यहां प्रस्तुत है। 20-21 वर्ष पूर्व की उनकी हस्तलिखित पांडुलिपि भी उनके पुराने कागजातों से प्राप्त हुई है।. . . अप्रैल 1991 में जब छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा (छमुमो) की लोक साहित्य परिषद् ने इस लेख को एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित करना चाहा तो स्वयं नियोगी ने इसकी भूमिका लिख दी।

- स.

भूमिका

मार्क्सवाद एक वैज्ञानिक विचारधारा है। यह विचारधारा विज्ञान के सिद्धांत पर आधारित होकर सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक स्थिति का द्वंद्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवादी नियमों से विचार-विश्लेषण करती है एवं भविष्य के लिए एक नई स्वप्निल समाज-व्यवस्था की कल्पना करती है। यह कल्पना शरद के आसमान में श्वेत बादलों की तरह दिशाहीन या अपने स्रोत से अलग-थलग एक कल्पना-विलास नहीं है। यह एक ऐसी कल्पना है जिस कल्पना को संजोकर करोड़ों लोग कांटों से भरी हुई सड़क पर चलते हुए खून से शरीर के अंगों को भिगो देते हैं और सारी कठिनाइयों को दूर करते हुए अपनी मंजिल तय करते हैं।

यह कल्पना वैज्ञानिक चिंतन पर आधारित है कल्पना है। यह कल्पना शीत की ठंड में कांपते हुए आषाढ़ की दक्षिण-पश्चिम मानसूनी हवा की कल्पना है, जो दक्षिण के समुद्र की कोख से पैदा होने वाली है और फिर एक दिन उसका काले रंग का व्यापक रूप विशाल भारत भूमि में एक जैव-रासायनिक परिवर्तन के उत्साह के साथ रूपांतर का नया आवेश सृष्टि करने वाला है।

---

[4]मूल पुस्तक से उद्धरित पृष्ठ संख्या : 81-88.

अट्ठारहवीं-उन्नीसवीं सदियों की रोमांचक औद्योगिक क्रांति के दिनों में जिन महान वैज्ञानिकों ने 'संयोग से नये अविष्कार' की धारणा को चकनाचूर कर वैज्ञानिक आधार पर नया सोच ढूंढ निकाला, उनमें कार्ल मार्क्स प्रमुख थे। कार्ल मार्क्स के मार्क्सवाद ने परिवर्तनशील दुनिया की असीम समय रेखा पर एक लंबी दूरी तक दिशा-निर्देशक के रूप में अपना स्थान बना लिया।

मार्क्सवाद ने पूंजीवाद का विश्लेषण उसके जन्म-लग्न से शुरू नहीं किया, बल्कि मार्क्सवाद की दूरबीनी आंखों ने सामंतवाद व उसके पूर्व की मानव सभ्यता के आदिम समय तक अपनी नज़रें निर्विष्ट कीं। फिर पूंजीवादी विकास की धारा को देखते हुए विकास की भावी धारा का अनुमान लगाया, जैसे कि सप्तर्षि का अनुसरण कर ध्रुव तारे तक पहुंचा जाता है। यह अनुमान सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के दिल में भविष्य के समाज का स्वप्न बनकर 'मानव ओजस्विता' को बार-बार प्रेरित करता रहेगा ताकि वह मार्क्सवाद के आधार पर एक नई शोषणविहीन सुख-शांतिमय समाज व्यवस्था को जन्म दे सके।

* * *

देश में सामाजिक बदलाव व क्रांति के नारे लगाने वाली पार्टियों की कमी नहीं है। करीब-करीब सभी राजनीतिक दल एक शोषणविहीन समाज व्यवस्था को अपना लक्ष्य बताते हैं। इनमें से बहुत सारे दल इस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारधारा पर चलने का दावा करते हैं। अगर लक्ष्य, विचारधारा व रास्ता एक है, तो फिर अलग-अलग पार्टियां क्यों? आम जनता यह बात समझ नहीं पाती। समझने का तरीका भी मालूम नहीं रहने के कारण वे तंग होते हैं, भटकते हैं और आखिर में चुप हो जाते हैं।

लेकिन चुपचाप रहने से तो हल नहीं निकलेगा। दिन-ब-दिन भुखमरी बढ़ रही है, बेरोजगारों की फौज बढ़ रही है, महंगाई आसमान छूती जा रही है। क्या करें? सोचना पड़ता है, कि सही रास्ता कौनसा है? किस रास्ते से मुक्ति मिलेगी?

लेकिन सही रास्ता ढूंढने का उपाय क्या है?

मान लीजिए, एक नारियल है। आपने नारियल को हाथ में लेकर देखा, आपको लगा इसका वजन 300 ग्राम है। आपकी पत्नी ने देखा, उनके विचार में उस नारियल का वजन 250 ग्राम है। आपके भाई को लगा वजन 275 ग्राम होगा। आपके दोस्त बोले कि नहीं, वजन 325 ग्राम ही है। सच कौन बोल रहा है? कैसे पता चलेगा? तराजू से वजन लिया गया तो नारियल का वजन 200 ग्राम निकला।

तराजू का इस्तेमाल करना ही तौलने का वैज्ञानिक तरीका है।

यही बात समाज विज्ञान में और राजनीति में भी लागू होती है। सही और गलत, सच और झूठ में फ़र्क करने का भी एक तराजू, यानी वैज्ञानिक तरीका होता है। यह तराजू मार्क्सवाद-लेनिनवाद का तराजू है।

दुनिया में विभिन्न प्रकार की घटनाएं होती रहती हैं और होती रहेंगी। हम घटनाओं का विश्लेषण नहीं कर पाते, इसलिए निराश होते हैं। अगर हमारे पास मार्क्सवाद-लेनिनवाद का तराजू हो तो हम निराश होंगे ही नहीं, बल्कि समस्याओं का हल निकाल सकेंगे।

आप कहेंगे कि हमारे देश में इतने सारे बड़े-बड़े नेता हैं, क्या उन्हें मार्क्सवाद-लेनिनवाद के बारे में पता नहीं है? उनको पता है या नहीं, इसका भी पता चलेगा मार्क्सवाद-लेनिनवाद के तराजू से।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद को समझने के लिए हमें द्वंद्वात्मक एवं ऐतिहासिक भौतिकवाद को समझना पड़ेगा। मार्क्सवाद वैज्ञानिक वस्तुवादी दर्शन है।

वस्तु क्या है? जिस चीज को हम देखते हैं, छू सकते हैं, या अनुभव कर सकते हैं, वही वस्तु है। यानी जिसका अस्तित्व है, वही वस्तु है।

मार्क्सवादी वस्तुवादियों का सिद्धांत है कि वस्तु से ही विचार पैदा होता है। भाववादियों का विचार इसके विपरीत है - वे कहते हैं कि विचार से ही वस्तु पैदा होती है।

हवाई जहाज की उत्पत्ति के बारे में ही देखा जाए। भाववादी लोग (पूंजीवादी-सामंतवादी विचारधारा के लोग) कहते हैं कि पहले इंसान ने

हवाई जहाज बनाने की बात सोची, फिर हवाई जहाज पैदा हुआ। मार्क्सवादी ने सवाल किया, ''हवाई जहाज क्यों बनाया गया उड़ने के लिए, है न? तो फिर उड़ने के बारे में सोच कहां से आया?'' आदमी रोज देखता है कि आसमान में बादल उड़ रहे हैं, हवा में पेड़ की पत्तियां उड़ रही हैं, पंछी उड़ रहे हैं। यह सब देखकर उसकी भी उड़ने की इच्छा हुई। हजारों प्रयासों के बाद हवाई जहाज बना।

लेकिन इतना कहने पर ही क्या भाववादी लोग वस्तुवादियों का कहना मान लेंगे? नहीं भाई, वे इतनी जल्दी मानने वाले नहीं हैं।

और एक उदाहरण लें। अगर आपसे पूछा जाए, ''भई, कौआ कैसा दिखाई देता है'', तो आप हंसकर कहेंगे, ''अरे, यह भी कोई सवाल है क्या?'' पर आपसे अगर पूछा जाए, ''बताइए, अमरीका का नाइटिंगेल पंछी कैसा दिखता है?'' तब आप बोल ही नहीं पाएंगे, क्योंकि आपने नाइटिंगल पंछी देखा ही नहीं। ऐसे हजारों उदाहरणों से बताया जा सकता है कि वस्तु ही सोचने का आधार है।

मान लीजिए कि आप कोई अच्छा काम करके आ रहे हैं। दिल में खुशी और मन में उमंग है। अचानक आपके सामने एक बच्चा गाड़ी से दबकर मर गया। क्या इस घटना को देखने के बाद आपके दिल में खुशी रहेगी? रह ही नहीं सकती। ऐसा क्यों? बच्चा दबकर मरने से पहले खुशी-उमंग और दबकर मरने के बाद दुःख क्यों हुआ? वस्तु ही आपके मन में सोच का परिवर्तन लाई है। भाववादी लोग इस वैज्ञानिक सत्य को स्वीकार नहीं करते हैं।

कार्ल मार्क्स के पहले भी भौतिकवादी लोग थे। लेकिन कार्ल मार्क्स ही वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 'वस्तु ही विचार का आधार', इस वैज्ञानिक सिद्धांत का अविष्कार किया एवं उसे प्रतिष्ठित किया। उनके इस सिद्धांत को 'वैज्ञानिक वस्तुवाद' या 'वैज्ञानिक भौतिकवाद' कहा जाता है।

मार्क्स आगे कहते हैं कि वस्तु द्वंद्वात्मक नियम से (यानी संघर्ष के कारण) ही रूपांतरित होती है, ताकतवर बनती है और एकता बनाती है। उन्होंने यह भी कहा कि हर एक वस्तु के अंदर विपरीतधर्मी शक्तियां रहती हैं।

विपरीतधर्मी शक्तियां रहने के कारण वस्तु के अंदर द्वंद्व (संघर्ष) रहता है। वस्तु के बाहर भी द्वंद्व (संघर्ष) है। इस अंदरूनी और बाहरी शक्ति संघर्ष से ही वस्तु रूपांतरित होती है। वस्तु के विकास का मूल कारण है, वस्तु का अंदरूनी संघर्ष। पर बाहरी संघर्ष भी वस्तु के ऊपर विभिन्न प्रकार से प्रभाव जमाता है। इसीलिए वस्तु के विकास के बारे में सिर्फ उसके अंदरूनी मुख्य द्वंद्व पर ध्यान देना और उसके बाहरी द्वंद्व की स्थिति पर ध्यान न देना, एक भयंकर गलती होगी।

उदाहरण के लिए एक मुर्गी के अंडे को लीजिए। अंडे के अंदरूनी संघर्ष के कारण उससे बच्चा होने की संभावना है, लेकिन अंडे से बच्चा होने के लिए ताप की ज़रूरत भी है। एक टुकड़ा सफेद पत्थर के ऊपर ताप देने से मुर्गी का बच्चा नहीं निकलेगा। उसी प्रकार सिर्फ अंडा रहने से भी बच्चा नहीं होगा, जब तक कि उसमें ताप न दिया जाए।

जिसका अस्तित्व है, वही वस्तु है। गीली मिट्टी वस्तु है। गीली मिट्टी को आप दल सकते हैं, मल सकते हैं, आप हाथ की शक्ति से उसको चूर-चूर कर सकते हैं। उसी गीली मिट्टी को आप ईंट के सांचे में डालकर, दिन भर धूप में सूखने दीजिए। शाम को अगर आपसे उसे तोड़ने को कहा जाए तो आप सबेरे से ज्यादा ताकत लगाकर ही उसे तोड़ पाएंगे। क्योंकि दिन भर धूप और मिट्टी के संघर्ष के द्वंद्वात्मक नियम से गीली मिट्टी ने सूखी मिट्टी बनकर ज्यादा ताकत संचय कर ली है। अगर उस सूखी मिट्टी को रात भर कोयले की आग में जलाया जाए तो आग और सूखी मिट्टी की लड़ाई में मिट्टी और ताकतवर बनकर पक्की ईंट बन जाती है। ईंट को तोड़ने की कोशिश करें, खाली हाथ से आप शायद ही तोड़ पाएंगे। गीली मिट्टी से सूखी मिट्टी एवं सूखी मिट्टी से ईंट बनने का गुण मिट्टी में ही है, लेकिन धूप और आग के द्वंद्व ने इस गुण को विकसित किया है।

जन्म के समय हम सभी का वजन 3-4 किलोग्राम से ज्यादा नहीं था, लेकिन आज हम 40 से 60 किलोग्राम के हैं। यह कैसे संभव हुआ? पैदा होते ही हम श्वास लेना शुरू करते हैं, हाथ-पैर हिलाते रहते हैं। सुस्ती लगती है और भूख भी। हम खाना खाते हैं, कभी सो जाते हैं। हमारे

अंदरूनी व बाहरी द्वंद्व चलते रहते हैं, हमारा रूपांतर होता रहता है - बचपन से यौवन, यौवन से बुढ़ापा। जब तक हम द्वंद्व यानी लड़ाई कर सकते हैं, तब तक हम ज़िंदा रहते हैं। जब हम और संघर्ष नहीं कर सकेंगे तब हम मर जाएंगे। यानी ज़िंदा आदमी मृत आदमी में रूपांतरित हो जाएगा।

कुछ और सरल उदाहरण देखें। आपके हाथ की चमड़ी और पैर की चमड़ी में कुछ फ़र्क है या नहीं? पैर की चमड़ी हाथ की चमड़ी से मोटी होती है, क्योंकि उसे हर वक्त जमीन के साथ, जूते के साथ संघर्ष करना पड़ता है। कलम चलाने वाले बाबू और घन चलाने वाले मजदूर के हाथों में फ़र्क है या नहीं? फ़र्क रहेगा ही। इसी प्रकार हमारी दाढ़ी एवं सिर के बालों में भी फ़र्क होता है। दाढ़ी का बाल रोज ब्लेड या छूरे के साथ लड़ाई में ताकतवर यानी मोटा होता है। इन सब उदाहरणों में विकास का असली गुण मांस, चमड़ी व बाल में ही है, लेकिन बाहरी द्वंद्व ने अंदरूनी द्वंद्व के ऊपर प्रभाव जमाया और उसके विकास में सहायता की। तो निष्कर्ष यह निकला कि विकास को समझने के लिए हमें दोनों प्रकार के द्वंद्वों को ज़रूरत के मुताबिक महत्व देना होगा। दोनों संघर्षों को एक बनाकर गड़बड़ करने से नहीं चलेगा। यह वस्तुवादी शिक्षा का मार्क्सवादी वैज्ञानिक सिद्धांत है।

इस शिक्षा को कोई मानता है, कोई नहीं मानता। जो मार्क्सवाद को नहीं मानता, क्या उसके हाथ की चमड़ी और पैर की चमड़ी में फ़र्क नहीं होगा? सिर के बाल और दाढ़ी के बाल में फ़र्क नहीं होगा? ज़रूर होगा। किसी के मानने या न मानने पर विज्ञान निर्भर नहीं करता। किसी के मानने या न मानने से सच को कोई फ़र्क नहीं पड़ता।

हमारे देश के कई राजनेता मार्क्स की शिक्षा को नहीं मानते हैं। वे कहते हैं कि मार्क्सवाद विदेशी विचारधारा है, हमारे देश में यह लागू नहीं हो सकती। लेकिन विज्ञान का कोई देश नहीं होता। वैज्ञानिक सच सभी देशों में लागू होता है।

आइए, हम वस्तुवादी दृष्टिकोण से राजनीतिक सवालों पर चर्चा करें। हम जिस समाज व्यवस्था में गुजर-बसर कर रहे हैं, वह वस्तु है, क्योंकि इसका अस्तित्व है। इस समाज में व्यवस्था और अव्यवस्था है, इसलिए हम लोग रोज-ब-रोज संघर्ष कर रहे हैं। वर्तमान समाज व्यवस्था की बुनियाद शोषण है। इसलिए इस समाज व्यवस्था को शोषणवादी समाज व्यवस्था कहा जाता है। इस समाज के उपादान क्या हैं? यहां मुख्यतः दो वर्ग हैं। एक शोषक वर्ग, जिसकी संख्या बहुत कम है और दूसरा शोषित वर्ग जिसकी संख्या बहुत ज्यादा है। वर्तमान व्यवस्था का उद्देश्य क्या है? मुनाफा। एक वर्ग दूसरे वर्ग का शोषण कर मुनाफा कमाता है। शोषित वर्ग अपना खून-पसीना बहाकर उत्पादन करता है, लेकिन उत्पादन के साधनों पर उसका अधिकार नहीं रहता। शोषक वर्ग उत्पादन के साधनों का मालिक है, यह खुद मेहनत नहीं करता है। मेहनतकश जनता द्वारा पैदा किए गए सामानों से मुनाफा कमाने का हक इसको होता है और यह हकदार बन जाता है मेहनतकशों को मजदूरी देने का।

शोषित वर्ग यदि कठोर श्रम न करे, तो धान, गेहूं, कोयला, लोहा आदि कोई भी चीज पैदा नहीं होगी, उसका मूल्य (कीमत) भी नहीं बनेगा, मालिक को भी मुनाफा कमाने का एवं मजदूरी देने का हक नहीं रहेगा। शोषक वर्ग (लुटेरा वर्ग) रोज-ब-रोज मजदूर-किसान वर्ग को जोंक जैसे चूस रहा है। शोषक और शोषित - इन दोनों वर्गों का अंदरूनी संघर्ष ही समाज को चला रहा है।

वर्तमान समाज में शोषक और शोषित, इन दोनों वर्गों के बीच संबंध क्या है? आप और आपके कारखाने का मालिक दोनों ही पेंट पहनते हैं और कमर में बेल्ट बांधते हैं। इन दोनों बेल्टों का संबंध क्या है? आपके मालिक की बेल्ट का घेरा हर साल बढ़ता जाएगा, क्योंकि हर साल मालिक का पेट मोटा होता जा रहा है। और आपकी बेल्ट का घेरा कम होता जाएगा, क्योंकि हर साल भुखमरी से आपका पेट कम होता जा रहा है। इस तरह ये दोनों बेल्टें एक-दूसरे से विपरीत स्थिति में हैं।

कार्ल मार्क्स हमें शिक्षा देते हैं कि शोषणमूलक समाज में दो विरोधी वर्ग रहते हैं। एक-दूसरे के विरोधी होने के कारण दोनों के बीच संघर्ष होना अनिवार्य है। वर्ग संघर्ष एक समय क्रांति में रूपांतरित होता है। एक वर्ग को राजसत्ता से हटाकर दूसरा वर्ग राजसत्ता पर कब्जा करता है। वर्तमान काल में यानी पूंजीवादी समाज में मजदूर वर्ग, वर्ग संघर्ष के रास्ते पर चलकर एक समय लुटेरे वर्ग को हटाकर राजसत्ता पर कब्जा करेगा, समाज को बदल डालेगा, एक शोषणविहीन समाज यानी असीम सुख-शांति वाला समाज बनाएगा। मजदूर वर्ग का राजसत्ता पर कब्जा करने का मतलब है - मजदूर वर्ग का अधिनायकत्व कायम करना। मजदूर वर्ग यदि दृढ़ निश्चयी होकर अपना अधिनायकत्व चलाता है, तभी शोषणविहीन समाज बन सकता है। मार्क्स की इस शिक्षा को मानने वाले को मार्क्सवादी कहा जाता है।

वर्तमान समाज वर्गों में बंटा हुआ है, मुख्यतः दो वर्ग हैं - शोषक और शोषित। ये दोनों वर्ग परस्पर विरोधी हैं। दोनों वर्गों के बीच द्वंद्व यानी वर्ग संघर्ष अनिवार्य है। वर्ग संघर्ष में बल का प्रयोग होता ही है, लेकिन बल प्रयोग के लिए जिम्मेदार कौन है?

शोषक वर्ग अपने शोषण का बंदोबस्त बनाए रखने के लिए राष्ट्र व्यवस्था (कानून, अदालत, पुलिस, फौज आदि) का सहारा लेता है और दूसरे वर्ग के ऊपर दमन-उत्पीड़न चलाता है। जब शोषक वर्ग हिंसा व जुल्म चलाता है, तब शोषित जनता के पास अपने को बचाने के लिए बल प्रयोग के अलावा कोई और रास्ता नहीं रहता।

सन् 1967 की 20 जून को भिलाई इस्पात कारखाने के एक मजदूर को सिक्योरिटी के जवान बिना किसी कारण बेरहमी से अधमरा होने तक पीटते रहे। चालीस हजार मजदूर संगठित होकर मैनेजर से इसका जवाब मांगने गए। मजदूरों के ऊपर भयंकर लाठी चार्ज किया गया। गुस्से में आकर मजदूरों ने भी एक-दो बसें जला दीं। लेकिन इसके लिए जिम्मेदार कौन था?

रायपुर के विद्यार्थियों ने अपनी 17-सूत्री मांगों को लेकर शांतिपूर्ण जुलूस निकाला। आंदोलन को कुचलने के लिए पुलिस ने भयंकर अत्याचार किया। लूटमार, मारपीट, के अलावा नागरिकों के घरों में घुसकर उनकी बहू-बेटियों के साथ बलात्कार तक किया। क्या इसके जवाब में नागरिक चुप बैठे रहेंगे?

अन्याय और दमन के खिलाफ जनता की हिंसा भड़क उठना अस्वाभाविक नहीं है। जब तक एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग को दबाया जाएगा तब तक यह सब वर्ग संघर्ष के चालू नियम से ही होता रहेगा। हमें ख्याल रखना चाहिए कि बिना कारण कोई भी घटना नहीं होती और शोषण ही जनता की हिंसात्मक कार्रवाई का मुख्य कारण है। इसलिए जिन लोगों ने शोषण का बंदोबस्त टिका कर रखा है, वे ही इस सब के लिए जिम्मेदार हैं।

मार्क्सवाद के विरोधी कहते हैं - मार्क्सवाद विदेशी विचारधारा है, यह भारत में लागू नहीं हो सकती।

भारत के वैज्ञानिक जगदीशचंद्र बसु ने दुनिया में पहली बार यह सिद्ध किया कि पेड़-पौधों में भी जीवन होता है। जगदीशचंद्र बसु तो भारतीय थे, तो क्या यह सच रूस, जर्मनी, चीन आदि में लागू नहीं होगा? कागज का आविष्कार चीन देश में हुआ, तो क्या हम कागज पर नहीं लिखेंगे? मार्क्सवादी, मार्क्सवाद-लेनिनवाद एवं माओ-त्से-तुंग के विचार को मानते हैं, क्योंकि यह समाज विज्ञान का सच है।

उदाहरण के लिए भारत के पहले नंबर के दलाल-पूंजीपति बिड़ला और उसके कारखानों में कार्यरत हजारों मजदूरों को लें। ये दो अलग वर्ग के हैं। बिड़ला शोषक वर्ग का है, मजदूर शोषित वर्ग में हैं। पूंजीवादी समाज में दो विरोधी वर्गों का अस्तित्व अवश्य ही रहता है। द्वंद्वात्मक नियम, यानी संघर्ष के नियम के अनुसार दो वर्गों के बीच वर्ग संघर्ष अनिवार्य है। कार्ल मार्क्स के सिद्धांत पर चलने वाले लोग यह जानते हैं कि एक दिन मजदूर वर्ग पूंजीपति वर्ग को हटाकर राजसत्ता पर बैठेगा यानी मजदूर राज का निर्माण होगा, समाजवाद का विकास होगा। हमारे

देश के कुछ नेता अहिंसा को परम धर्म बताते हैं। लेकिन समाज मे दो विरोधी वर्गों की अवस्था ही निरंतर हिंसा की सृष्टि कर रही है। जनता को अहिंसावादी बनने की सलाह देना विज्ञान पर आधारित नहीं है। जब तक पूंजीपति की नाज़ायज हिंसा रहेगी तब तक जनता यह सलाह नहीं सुनेगी।

लेनिन हमें शिक्षा देते हैं कि जनता विभिन्न वर्गों में बंटी हुई है और हर वर्ग उनकी राजनीतिक पार्टियों द्वारा संचालित होता है। कोई भी पार्टी या उसका नेता वर्ग से परे नहीं होता। फलां नेता अच्छा और फलां नेता खराब - मार्क्सवादी लोग इस ढंग से विचार नहीं करते, वे इस पर वर्ग-दृष्टिकोण से विचार करते हैं। हमें मजदूर और किसान वर्ग के नेता को मानना चाहिए एवं दूसरे वर्ग के नेता का विरोध करना चाहिए। हमारे देश में शोषक वर्ग की संख्या 5 प्रतिशत एवं शोषित वर्ग की संख्या 95 प्रतिशत है। 5 प्रतिशत लोग इस समाज को बनाए रखना चाहते है और 95 प्रतिशत लोग इस समाज व्यवस्था को खत्म करना चाहते हैं। 5 प्रतिशत लोगों के साथ 95 प्रतिशत लोगों की लड़ाई! फिर भी 5 प्रतिशत का, यानी पूंजीपति वर्ग का राज चल रहा है! कैसे?

मान लीजिए, आपके मोहल्ले में एक दुबला-पतला लड़का रहता है। दारासिंह के साथ उसकी कुश्ती प्रतियोगिता होने वाली है। दारासिंह सोचेगा, 'अरे, यह क्या लड़ेगा मेरे साथ, मैं तो इसे उठाकर फेंक दूंगा।' अगर वहीं दुबला-पतला लड़का दारासिंह की तरफ चलते हुए झट से पिस्तौल निकाल लेता है तो क्या होगा? दारासिंह कितना भी ताकतवर क्यों न हो, डर जाएगा। ऐसा क्यों? क्योंकि अब लड़ाई होगी दारासिंह के साथ दुबले-पतले उस लड़के और उसके हथियार की। आज की स्थिति कुछ ऐसी ही है। पूंजीपति वर्ग ने पिस्तौल के बल पर मजदूर वर्ग को दबाकर रखा है। पूंजीपति वर्ग का हथियार क्या है? राष्ट्र व्यवस्था यानी शासन, पुलिस, मिलिटरी, अदालत, जेल आदि। 5 प्रतिशत लोग और उनका शासन ही 95 प्रतिशत जनता को लूट रहे हैं। शोषणमूलक समाज में शासन यानी राष्ट्र-तंत्र शोषकमूलक समाज के ढांचे की ही रक्षा करता है। वह कभी भी शोषित वर्ग के हित में नहीं हो सकता है।

जब तक शोषण रहेगा तब तक राष्ट्र-तंत्र शोषक वर्गों के हाथ में ही रहेगा।

आज दुनिया में बहुत सारे देशों में शोषणविहीन समाज बन चुका है। वहां के शोषित वर्ग यानी मजदूर-किसान, मध्यमवर्गीय, निम्न-मध्यमवर्गीय, छात्र-युवाओं के मोर्चे ने शोषणमूलक समाज को ध्वस्त कर दिया है एवं समाजवादी समाज की स्थापना की है।

हमारे देश के कम्युनिस्ट नामधारी कुछ गुट (सी.पी.आई., ए.आई.सी.पी., सी.पी.एम. आदि) कहते हैं कि आज की नई परिस्थिति में वर्ग संघर्ष की ज़रूरत नहीं है। आज की परिस्थिति में शोषित वर्ग यानी मजदूर-किसान पहले से बहुत ज्यादा ताकतवर हो गया है। इसलिए आज वर्ग संघर्ष से नहीं, बल्कि शांति के रास्ते पर चलकर शोषित वर्ग, शोषक वर्ग को उखाड़ फेंकेंगे। ये लोग वर्ग संघर्ष के सिद्धांत को बदलकर वर्ग सह-अस्तित्व (वर्ग समझौता) के सिद्धांत का प्रचार कर रहे हैं।

परिस्थिति तो रोज बदल रही है और बदलेगी भी, इसलिए क्या वैज्ञानिक सिद्धांत भी बदल जाएगा? बच्चा पैदा होगा पर मां को प्रसव पीड़ा नहीं होगी? प्रसव के समय खून नहीं गिरेगा? क्या लुटेरा शोषक वर्ग रहने पर भी लूट-खसोट नहीं होगी? क्या बदली हुई परिस्थिति को देखकर शेर का ह्दय परिवर्तन हो जाएगा, शेर खून पीना, मांस खाना छोड़कर घास खाना शुरू करेगा? क्या मजेदार तत्व है इन कम्युनिस्ट नामधारी सुधारवादियों का।

जब तक वर्ग संघर्ष के सिलसिले में क्रांति नहीं होगी यानी लुटेरे वर्ग के हाथों से मजदूर-किसान वर्ग राजनीतिक सत्ता छीन नहीं लेगा, तब तक शोषक वर्ग शोषण जारी रखेगा ही। सबसे पहले ज़रूरी है लुटेरे वर्ग का सफाया करना। वर्ग संघर्ष का रास्ता ही शोषण-मुक्ति का एक मात्र रास्ता है। **इस रास्ते पर चलने के लिए जनता को चाहिए मार्क्सवादी वैज्ञानिक वस्तुवादी विचारधारा।**■

लुटेरा राज खत्म करना है[5]

नियोगी की अपनी लिखावट में यह लेख मिला है। इसकी बंगला-प्रभावित हिंदी को हमने बिना सुधारे ही छोड़ दिया है। इसकी तारीख पता नहीं है, पर अनुमानित समय सन् 1980-81 का है। मार्क्सवादी सोच को सरल शब्दों में प्रस्तुत करने की नियोगी की क्षमता का यह एक अच्छा उदाहरण है।

-स.

दुनिया बहुत आगे बढ़ गई है। दुनिया के तमाम फायदे भले आदमी लोगों के लिए हैं। भले आदमी हवाई जहाज में चढ़कर दिल्ली-कलकत्ता घूमते हैं। रंग-बिरंग का बढ़िया खाना खाते हैं। सुंदर-सुंदर कपड़े पहनते हैं। उनके लड़के मोटरगाड़ी में चढ़कर स्कूल जाते हैं। उनके घर की लड़कियां बढ़िया साड़ियां पहनकर फुर-फुर उड़ती हैं। पर ये लोग बिल्कुल मेहनत नहीं करते हैं। नौकर खाना पकाता है। नौकर कपड़ा कांचता (धोता) है। एक ग्लास पानी भी नौकर के भरोसे पीते हैं।

जबकि आदमी जन्म लेता है, तब मां के पेट से धन-दौलत लेकर पैदा नहीं होता है। भले आदमी के पास इतनी दौलत आई कहां से? बिना मेहनत के उनके पास इतना पैसा कहां से आया? यह समझने के लिए बनिया लोगों को देखिए। जब देश से आया था, तब लोटा धर कर आया था। आज तो पूरे छत्तीसगढ़ के मालिक ये ही लोग हैं - बड़ा-बड़ा पक्का मकान, ट्रक, टेलीविजन, गाड़ी, बैंक में बहुत सा पैसा जमा कर लिया है। खदान का ठेका, तेंदूपत्ता का ठेका, बड़ी-बड़ी दुकान जमा लिया है। लोटे वाले आदमी 10-20 साल में कैसे इतने पैसों के मालिक बन गए? और हम आप दिनभर मेहनत करने के बाद भी दिनोंदिन गरीब होते जा रहे हैं। इस बात को थोड़ा सोचिए। इसी का नाम राजनीति है। राजनीति का मतलब है - लुटेरा और मेहनतकश वर्ग के बीच रिश्ता (यानी संघर्ष)।

---

[5]मूल पुस्तक से उद्धरित पृष्ठ संख्या : 133-134.

आज हमें एकता बनाकर लुटेरा लोगों के साथ लड़ना होगा। जंगल के शेर की आदत है खून पीने की, लुटेरा वर्ग भी शेर जैसा है। वह हमेशा मेहनती लोगों की खून-पसीने की कमाई लूटता है। इनकी आदत कभी नहीं बदलेगी।

अगर जनता एकजुट होकर हिम्मत के साथ लड़ना चालू करती है तो पैंट-कुर्ता पहनने वाले शेर भागेंगे। ये सब मिट्टी के शेर बन जाएंगे। [जिस प्रकार] मिट्टी के बने हुए शेर का कोई दम नहीं है। उसी प्रकार ये आदमी शेर का भी कोई दम नहीं है। जैसे हम लोग खेत में 'डरावनी' रखते हैं जिसमें एक फटा कपड़ा उड़ता है - चिड़िया डर कर सामने नहीं आती है। परंतु उसमें कोई दम नहीं है। वह दिखाने के लिए डरावनी है। इसलिए आज हमें हिम्मत करके एकजुट होकर लड़ना होगा।

अगर हममें एकता न हो तो कोई भी दुश्मन आकर हमें तोड़ सकते हैं। एकठो कंचि (केवचि)[6] को देखो। एक बच्चा भी इसको तोड़ सकता है लेकिन जब एक गड्डा कंचि आ जाती है तो इसको तोड़ना बहुत ही मुश्किल है। इसलिए एकताबद्ध (एकजुट) रहना है।

दो बिल्लियों में एक रोटी को लेकर खूब झगड़ा हुआ। क्योंकि वे एक-दूसरे पर विश्वास नहीं करती थीं। एक बोलती थी कि मैं बांटूंगी, दूसरी बोलती थी मैं बांटूंगी। रास्ते में एक बंदर मिला। बंदर ने पूछा, क्यों झगड़ा करती हो। बंदर बोला, ''लाओ मैं बांट देता हूं।'' बंदर ने रोटी के छोटे-बड़े दो हिस्सों में टुकड़े किए। फिर बराबर करने के बहाने से निकाल कर खाता गया। वैसे ही पूरी रोटी खा गया। वैसे ही हम जब कभी आपस में बिल्लियों की तरह लड़ते हैं, तब बंदर की तरह सरकारी पुलिस, वकील, शोषक वर्ग हमारे पैसे खा जाते हैं। इसलिए हमें आपस में नहीं लड़ना चाहिए। अगर लड़ना है तो दुश्मनों के साथ लड़ो।

---

[6] 'कंचि' का बंगला मे और 'केवचि' का छत्तीसगढी मे अर्थ है 'पौधे की नरम टहनी'। पांडुलिपि से स्पष्ट नही है कि नियोगी ने किस शब्द का उपयोग किया है। शायद दोनो का ही।

दुनिया में लड़ाई दो प्रकार की होती है। एक न्याय के लिए लड़ाई, दूसरी अन्याय के लिए लड़ाई। जब कोई गुंडा, डाकू जनता को मारता है तो वह अन्याय की लड़ाई है और जब जनता गुंडा-डाकू को मारती है तो वह न्याय की लड़ाई होती है। हम न्याय की लड़ाई में खुशी से भाग लेते हैं और अन्याय की लड़ाई का विरोध करते हैं।

लड़ने से ताकत कभी कम नहीं होती है, बल्कि ताकत बढ़ती है। एक सुखियार आदमी के हाथ और एक मजदूर के हाथ में क्या फ़र्क है? मजदूर के हाथ घन चलाते हैं, टंगिया चलाते हैं, इसलिए मजबूत होते हैं। हमारे हाथ की चमड़ी और पैर की चमड़ी में फ़र्क होता है। पैर हमेशा जमीन में चलकर, जमीन के साथ लड़कर मजबूत होता है जबकि हाथ की चमड़ी नरम होती है। हम लड़कर ही लड़ाई सीखेंगे। **बच्चा पैदा होते ही चलना चालू नहीं करता है, धीरे-धीरे चलना चालू करता है। बहुत गिरता है, फिर चलना सीखता है। हम भी लड़ाई लड़ते-लड़ते मजबूत होंगे - लड़ाई सीखकर लुटेरा राज खत्म करेंगे।**■

दो कविताएं[7]

लाखों हाथों में काम की भूख,
लाखों पेटों में भूख की आग
और हर दिल में गुस्से की आग,
जंगल की आग सारी पहाड़ियों में।

हाथ
सिर्फ जोड़ने के लिए नहीं,
हाथ
गर्दन मरोड़ने के लिए भी होता है।
मेहनतकशों का हाथ
सिर्फ श्रम के लिए नहीं,
लुटेरों के हाथों को
तोड़ने के लिए भी होता है।

- शंकर गुहा नियोगी

[7]मूल पुस्तक से उद्धरित पृष्ठ संख्या 254 (मूल हिंदी मे)

न्यायपूर्ण छत्तीसगढ़ का सपना गढ़ती यूनियन से बौखलाई पूंजीवादी राजसत्ता[8]

''. . . जिस नियोगी को तीन गोलीकांड, अनेक जेल-यात्राएं और बिकी हुई यूनियनों के माफिया गुंडे-गिरोह कभी नहीं रोक सके, वही नियोगी अब भिलाई के धन-कुबेरों के दरवाजे पर स्वंय दस्तक दे रहे थे। मजदूरों की वर्ग-चेतना के फैलते हुए दायरे और उनकी संगठित ताकत के सहारे नियोगी छत्तीसगढ़ में औद्योगिक प्रगति के नाम पर चलाई जा रही शोषण की प्रक्रिया और विकास की जन-विरोधी नीतियों को चुनौती दे रहे थे। यदि बात मात्र इतनी ही होती तो भी ये पूंजीवादी ताकतें शायद नियोगी को ज़िंदा रहने देती। पर नियोगी न्यायपूर्ण छत्तीसगढ़ के लिए चल रहे आंदोलन के फलस्वरूप मजदूरों के दिलों में बन रही बेहतर समाज की छवियों को 'संघर्ष और निर्माण' की रचनात्मक राजनीति के द्वारा ठोस रूप भी देते चले जा रहे थे। छमुमो के जुलूसों, धरनों और सत्याग्रहों से कहीं अधिक खतरनाक साबित हो रहे थे दल्ली राजहरा के शहीद अस्पताल, शहीद स्कूल और शहीद गैरेज। **उद्योगपति और प्रशासन यह तो जानते थे कि यूनियनों के झंडों-डंडों से कैसे निपटा जाए पर वे यह नहीं जानते थे कि उन मजदूरों का क्या करें जो नई आर्थिक और औद्योगिक नीतियों के पीछे छिपी शोषक एवं साम्राज्यवादी प्रक्रियाओं को पहचानने लगे थे, जो अपने जंगल और पर्यावरण की स्वयं रक्षा करने लगे थे, जो भोपाल गैस कांड के बाद यूनियन कार्बाइड की एवरेडी बैटरी का बहिष्कार करने लगे थे या नर्मदा पर बन रहे सरदार सरोवर बांध के विरोध में आयोजित बड़वानी से बांधस्थल तक की 'संघर्ष यात्रा' में हिस्सेदारी करने लगे थे।** शासक वर्ग उस मजदूर संगठन से कैसे निपटे जो पूरे छत्तीसगढ़ अंचल के जन संगठनों को अगस्त 1990 से एक मंच पर इकट्ठा करने की प्रक्रिया चला रहा था और 'नए भारत के लिए नया छत्तीसगढ़' बनाने का सपना गढ़ रहा था एवं छत्तीसगढ़ की विपुल प्राकृतिक संपदा के पूंजीवादी दोहन के लिए बनाई गई विश्व बैंक-समर्थित शोषणकारी योजनाओं का डटकर विरोध कर रहा था। उस संगठन का सामना कैसे किया जाए जो मजदूरों को अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से लिए गए कर्ज के संदर्भ में 'आयातित तकनालाजी' के खिलाफ 'देशप्रेमी तकनालाजी' का पाठ सिखा रहा था।''■

---

[8]मूल पुस्तक से उद्धरित पृष्ठ संख्या : 37.

खंड दो

सामाजिक-आर्थिक व राजनीतिक पृष्ठभूमि

शंकर गुहा नियोगी
- भाषण, लेखन एवं साक्षात्कार

- जीवन की मृत्यु पर विजय
- भिलाई : चंद तथ्य
- मजदूरी, काम एवं रहन-सहन की परिस्थितियां
- भारत में मजदूर संगठन और औद्योगिक रिश्ते

जीवन की मृत्यु पर विजय[9]

सन् 1989-90 के दौरान नियोगी इस कोशिश में लगे रहे कि छत्तीसगढ में मजदूरों, आदिवासियों एवं अन्य सभी शोषित तबकों के बीच कार्यरत लोग व विभिन्न संगठन एक मंच पर आएं और मिलकर एक वैकल्पिक राजनीति की नींव रखें। इसी प्रयास के फलस्वरूप 17-18 अगस्त 1990 को रायपुर में एक सम्मेलन हुआ, जिसमें छत्तीसगढ के दूर-दराज क्षेत्रों में कार्यरत अनेक संगठनों के कार्यकर्त्ता पहली बार एक मंच पर आए। इस सम्मेलन में नियोगी द्वारा दिया गया निम्नलिखित भाषण सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया व उसमें कार्यकर्त्ताओं की भूमिका के बारे में उनका चिंतन, उनकी विशेष प्रेरणाशील शैली में प्रस्तुत करता है। मूल भाषण के कई अंश छत्तीसगढी में थे; उनमें से कुछ का यहां हिन्दी में रूपांतरण किया गया है, शेष अभी भी छत्तीसगढी में है।

-स.

तो कल और आज, दो दिन लगातार बहुत सारे कार्यकर्त्ता साथियों ने यहां आकर विचार-विमर्श किया। हमारे बहुत से साथी जिन्होंने विचार-विमर्श में भाग नहीं लिया, वे भी बहुत ध्यान लगाकर, मन लगाकर इन विचारों को सुनते रहे। सभी कार्यकर्त्ता साथियों ने बहुत सुंदर ढंग से जो विचार रखे हैं, वे जीवन के साथ जुड़े हुए सवाल हैं। आज समाज में जो मुद्दे हैं, असमानताएं और विषमताएं हैं, उनको एक-एक करके, फूल की पंखुड़ियों के समान खोलकर, प्रस्फुटित कर उन्होंने इस चर्चा-रूपी हमारे बगीचे को सुशोभित किया है। अच्छी-अच्छी बातें हुईं, और इन बातों में एक बात जो सभी ने कही, वह है - 'हमें परिवर्तन चाहिए। इस व्यवस्था से हम बहुत दुखी हैं, और हमें परिवर्तन चाहिए, हमें इंकलाब चाहिए।' एक गुणात्मक परिवर्तन के लिए, एक समग्र क्रांति के लिए, लोगों के दिलोदिमाग में भावनाएं उमड़ रही हैं। अब काम करने का समय आ चुका है। हमारी उम्र घटती जा रही है और पता नहीं आगे यह काम पूरा होगा कि नहीं होगा। काम इतना है कि इसे हजारों सालों में भी पूरा नहीं किया जा सकता है। **जिस काम को हजारों सालों में भी पूरा**

---

[9]मूल पुस्तक से उद्धरित पृष्ठ संख्या : 282-295.

नहीं किया जा सकता, उसमें एक पल भी गंवाने से क्या फायदा है? इसलिए काम के ज़रिए, काम से समय को पकड़ के रखो। समय को चूकने मत दो।

भ्रांति, क्रांति और शांति

आपने, हमने और सभी साथियों ने एक असीम सुख-शांति वाली समाज व्यवस्था का जो सपना देखा है, उसे हासिल करने के लिए क्रांति चाहिए। इसे हमने समझा है, स्वीकार किया है। **परंतु क्रांति तभी आएगी जब देश के अंदर जो भ्रांतियां चल रही हैं, वे दूर हो जाएं। जब तक भ्रांतियां दूर नहीं होंगी, तब तक क्रांति नहीं हो सकती, और जब तक क्रांति नहीं होगी, तब तक शांति बनेगी नहीं, और शांति हमें मिलेगी नहीं।**

भ्रांतियां आज बहुत सारी हैं। सबसे बड़ी भ्रांति यह है कि कांग्रेस बदल गई, जनता दल आ गया, जन मोर्चा आ गया, भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) आ गई और क्या-क्या नहीं आ गया। इन सभी लोगों ने बड़े सुंदर-सुंदर आश्वासन देना चालू कर दिया और चिकनी-चुपड़ी बातें शुरू कर दीं - 'हम ये कर रहे हैं, वो कर रहे हैं।' इन बातों से एक भ्रांति पैदा हो रही है। परंतु एक और भ्रांति है जिसके बारे में हमने ज्यादा चर्चा नहीं की। सत्ता एक ऐसी व्यवस्था बनाना चाहती है, जहां खौफ़ और आतंक का राज हो। वह खौफ़ और आतंक को ही सर्वशक्तिमान साबित करना चाहती है।

तुम मजदूर! तुम अपनी मेहनत का दाम मांगते हो? तुम किसान! सिंचाई के लिए पानी मांगते हो? तुम विद्यार्थी! सुंदर पढ़ाई की व्यवस्था मांगते हो? तुम महिला! तुम्हारे ऊपर अत्याचार हो रहा है, तुम उससे मुक्ति मांगती हो? वह तो मिलना ही चाहिए, परंतु नहीं मिला, उसके लिए तुम कोई विरोध नहीं कर सकते। अगर विरोध करोगे तो ये देखो, हमारे ये वर्दी वाले लोग हैं, और वर्दी वालों से पहले तो हमारे सामाजिक लोग हैं - जिनको आप और हम असामाजिक कहते हैं, गुंडा कहते हैं। उन असामाजिक लोगों को वे भेज देते हैं, मारपीट करते हैं, गुंडागर्दी करते

हैं, अत्याचार करते हैं और यदि उसके ज़रिए से भी नहीं हुआ तो पुलिस भेजकर, गोली चलाकर, वे खौफ़ पैदा करते हैं, आतंक पैदा करते हैं। जिससे लोग अपना रास्ता भटक जाएं, भ्रमित हो जाएं और चुपचाप रहें। हमारे दिमाग में यह स्पष्ट होना चाहिए कि कोई भी खौफ़, कोई भी आतंक हमें दबा नहीं सकता, हमारे चलने की राह को रोक नहीं सकता, रोड़ा बनकर पथ में खड़ा नहीं हो सकता। अगर खड़ा होता है, तो हम एक-एक रोड़ा हटाकर आगे बढ़ेंगे।

साथियों! भटकाव आता है। भटकाव के समय हमारा दिमाग बहुत साफ होना चाहिए, हमारा विचार परिपक्व होना चाहिए। अगर परिपक्व विचार लेकर हम आगे नहीं बढ़ पाएंगे तो विशाल अंधकार में हम कहां गुम हो जाएंगे, पता नहीं चलेगा। हमारे पीछे बहुत बड़ा इतिहास है। इतना बड़ा इतिहास है, जिसे ज़िंदगी भर सुनते रहें, तो भी पूरा नहीं होगा। हजारों साल का इतिहास है, कितनी कुर्बानियों का इतिहास है! हमारे देश में कितने लोगों ने कुर्बानी दी है - चंद्रशेखर आजाद, भगत सिंह, वीर नारायण सिंह, महात्मा गांधी, रामाधीन गोंड, बस्तर के हमारे मुरिया साथी लोग। परंतु तथाकथित आजादी मिलने के बावजूद सन् 1948 में राजनांदगांव में पहली बार मजदूरों के ऊपर गोली चली, जो क्रांग्रेस शासन ने चलाई, बंगाल-नागपुर कॉटन (बी. एन. सी.) मिल के मजदूरों के ऊपर। अंग्रेजों ने सबसे पहले सन् 1920 में गोली चलाई थी - बी. एन. सी. मिल के मजदूरों के ऊपर, भारत में मजदूर आंदोलन में पहली हत्या। आजाद भारत में सन् 1948 में कांग्रेसियों के जमाने में, पहली बार गोली चली, वह भी राजनांदगांव में मजदूरों के ऊपर। जनता पार्टी बनी, सबसे पहले गोली चली दल्ली राजहरा के मजदूरों के ऊपर। बीच में, सन् 1984 में कांग्रेस आई उस दौरान राजनांदगांव में फिर गोली चली। फिर भारतीय जनता पार्टी का राज आया, तो उन्होंने भी छत्तीसगढ़ की जनता के ऊपर गोली चलाई, अभनपुर के मजदूरों के ऊपर।[10] छत्तीसगढ़ की जनता ने बार-बार जिन सपनों को संजोकर

---

[10]नियोगी की हत्या के बाद, भाजपा शासन काल में 1 जुलाई 1992 को एक बार फिर मजदूरों पर गोली चली, इस बार भिलाई में।

रखा था, उन सपनों को पूरा करने के लिए बार-बार कोशिश की और एक बड़ी शक्ति के रूप में उभर कर शोषण करने वाले लोगों के खिलाफ आवाज बुलंद की। परंतु खौफ़ चाहने वालों ने आतंक फैलाकर, जनता को दबाने वाले, शोषण करने वाले लोगों ने छत्तीसगढ की जनता के ऊपर बार-बार गोली चलाकर उन्हें दबाया।

इसीलिए आप देखते हैं कि इस देश के अंदर आज जो सबसे विकराल समस्याएं बन रही हैं - पंजाब, कश्मीर, आसाम, बोडो और लिट्टे। इसके पीछे क्या कारण हैं? देश की असमान विकास की प्रक्रिया। समान विकास नहीं हो पाया, इसलिए इस प्रकार कि बातें अलग-अलग जगहों में विभिन्न रूपों में, विभिन्न बातें, विभिन्न समस्याओं के आधार पर ये नतीजे सामने आ रहे हैं। तो इस समय छत्तीसगढ़ की जनता के सामने भी जो सपने हैं, उनको पूरा करने के लिए हमारे शहीदों ने जो कुर्बानी दी, उन कुर्बानियों के रक्त-सिंचित रास्ते पर चलकर उन शहीदों के सपने हमें पूरे करने होंगे और एक नए छत्तीसगढ़, नए भारत के लिए कल्पना करनी होगी! इस कल्पना को साकार करने के लिए कार्यक्रम बनाना होगा, और उस पर ईमानदारीपूर्वक अमल करना होगा।

मरणशील तत्व और जीवनशील तत्व

भ्रांति की बात मैंने शुरू में की थी। उसी भ्रांति के बारे में आपसे बात करना चाहता हूं। मनुष्यों में और सभी जीवों में दो तत्व होते हैं। एक मरणशील तत्व और दूसरा जीवनशील तत्व। ये दोनों तत्व हमारे अंदर हैं। हम ज़िंदा हैं, फिर भी मरणशील तत्व हमारे ऊपर हावी हैं। मृत्यु के बाद शरीर जड़ हो जाता है, जीवन की शक्ति समाप्त हो जाती है, तब मरणशील तत्व हमारे ऊपर पूर्णरूप से हावी हो जाते हैं। जीवनशील तत्व और मरणशील तत्वों के बीच यह संघर्ष जारी है। जिस समय जीवनशील तत्व ज्यादा ताकतवर होते हैं, हम आगे बढ़ते हैं, सपना आगे बढ़ता है। और जिस समय मरणशील तत्व हमारे ऊपर हावी हो जाते हैं, उस समय हमारे सपने की मृत्यु हो जाती है। **तो सपने को जिंदा रखने, आगे बढ़ने वाले रास्ते को बनाए रखने के लिए ज़रूरी है कि**

मरणशील तत्वों के ऊपर जीवनशील तत्व हावी रहें, यह सबसे ज़रूरी है। भ्रांतियों के ऊपर क्रांति हावी रहे, यह भी बहुत ज़रूरी है। अगर भ्रांति के ऊपर क्रांति हावी नहीं रह पाएगी, तो ज़रूर दिखने के लिए दिखेगा कि हमारा शरीर जिंदा है, परंतु यदि हमारे सपने की ही मृत्यु हो गई तो इस जीवन की क्या कीमत है? हमारे इस जीवन का, हमारे इस समाज के जीवन का, हमारे देशवासियों के जीवन का कोई मतलब निकलना चाहिए। कोई बात बननी चाहिए और उस बात को बनाने के लिए एक नए भविष्य की कल्पना हमें बार-बार करते रहना है। छत्तीसगढ़ में क्या, पूरे भारत में भी यही बात है।

अभी मैं पूरे भारत की बात न करके छत्तीसगढ़ में ही अपने को सीमित रखना चाहता हूं। मैंने पहले ही बताया है कि छत्तीसगढ़ के लोगों ने अंग्रेजों के जमाने में पहले कुर्बानी दी। कांग्रेस के जमाने में, फिर जनता पार्टी के जमाने में, फिर कांग्रेस के जमाने में और फिर भारतीय जनता पार्टी के जमाने में कुर्बानी का रास्ता जारी रखा। मेरे साथियों, आपसे मेरा निवेदन है कि जिस अंधकार के खिलाफ हमारे शहीदों ने कुर्बानी दी थी, उस कुर्बानी की बातों को याद करें - आज भी अंधेरा हैं, रोशनी नहीं आई है। आपके कदम को मजबूती के साथ, कार्यक्रम के साथ में जोड़कर आपको आगे बढ़ना होगा, समय के चूकने से यह नहीं होगा।

साधारण के साथ विशेष को जोड़ें

हमारे जीवन में, हम लोगों के जीवन में, मैं सामाजिक कार्यकर्त्ता साथियों की बात कर रहा हूं, आम जनता की बात नहीं कर रहा हूं। सामाजिक कार्यकर्त्ता के सामने भी एक समस्या मैं बार-बार देख रहा हूं। लोग हमारी बात सुनते ज़रूर हैं, परंतु उस पर अमल नहीं करते। फिर एक बात पैदा होती है, कार्यकर्त्ता साथी भी इन बातों से प्रभावित रहते हैं! वह बोलते हैं कि 'पहले तो भई अपन परिवार ला देखना है, ओकर बाद में हो सकही तो घर ला देखना है, फिर हमर गली ला देखना है, मुहल्ला ला देखना है, गांव ला देखना है। औ भई हमर अतिक शक्ति तो नई हे कि समाज के काम ला करन, फिर देश के बात तो बड़े बात है। तभो ले

अगर मौका मिल जाही तो ओ मा घलो हाथ बंटा देबोन!' ये जो विचार है कि घर से शुरू करेंगे, परिवार से शुरू करेंगे, ये भी भ्रांति है। कितने ही कार्यकर्त्ता साथी हैं, जो इस भ्रांति में फंसे हैं। ये इससे निकल नहीं पा रहे हैं। कभी-कभी कोई साथी महात्मा गांधी को भी पढ़कर उसकी गलत परिभाषा वहां पर शुरू कर देते हैं। **गांव का विकास करते-करते गांव तक ही सीमित हो जाते हैं। जब तक साधारण के साथ में विशेष को हम जोड़ नहीं पाएंगे, विशेष को जब तक साधारण के साथ में जोड़ नहीं पाएंगे, उसका रिश्ता स्थापित नहीं कर पाएंगे, तब तक हमारा विशेष मुद्दा तय नहीं हो सकता।** अगर आपके गांव में आसपास एक नदी है, अगर बाढ़ का पानी आ चुका है तो कैसे करेंगे आप? जब आपके गांव में पानी घुसेगा तो क्या होगा? सारे गांव की झोपड़ियों के गिर जाने का डर होगा। परंतु आपके गांव के पास की नदी में जब बाढ़ आ रही है, तो क्या आसपास के और भी गांव हैं, वहां पानी नहीं आएगा? वहां पर भी गांव में प्रवेश नहीं करेगा? क्या गांव नहीं डूबेगा? फिर आप कैसे अपने गांव को बचा सकते हो? कैसे अपने घर को बचा सकते हो? अगर बादल हैं, चारों तरफ बादल हैं, तो बारिश होगी। अगर बादल नहीं हैं, तो बारिश नहीं होगी। आपके गांव में भी नहीं होगी, दूसरे गांव में भी नहीं होगी, देश में नहीं होगी तो आपके गांव में भी नहीं होगी। **जो देश में होगा, वह आपके यहां होगा, ये विशेष से साधारण, साधारण से विशेष में आना होगा।** परंतु अपने ही गांव को आधार बनाने का जो सीमित विचार है, कहीं पर दूसरे छोटे-छोटे मुद्दों पर या दूसरे समूहों को आधार बनाकर इन्हीं बातों को रखा जाता है। हमें इन भ्रांतियों से मुक्ति मिलनी चाहिए। इन भ्रांतियों से हमें दूर होना है।

मैं सबसे बड़ी भ्रांति यहां आपके सामने रखूंगा। नियति के संबंध में एक भ्रांति है। छत्तीसगढ़ में कहते हैं कि 'का करबोन जी, ये जनम का कर्जा हा अगले जनम में चुकाए बर पड़ही। ओ हा कुकुर बनके नहीं तो बैला बन के छुटाही हमर कर्जा ला। नियति जो हमर है, ऐसने है भैया, कैसे

करबोन?' अब इस प्रकार से जो भ्रांति है, जबर्दस्त भ्रांति, नियति की भ्रांति हमारे सामने है। दो बातें हैं - एक बात नियति, दूसरी बात है स्थिति। **नियति और स्थिति, एक-दूसरे से एकदम विपरीत हैं।** हमारे छत्तीसगढ़ के कार्यकर्त्ता साथियों के सामने ये बात बार-बार आती है। नियति की बात बार-बार आती है, इसलिए नियति की बात और स्थिति की बात स्पष्ट होनी चाहिए। जैसे, हमेशा हमारी बहनें कहती हैं कि पुरुष महिला के ऊपर ज्यादती करता है और कई महिलाएं इसे नियति समझकर स्वीकार कर लेती हैं। **स्थिति और नियति के बीच में जो नियति है, वह जड़ है, उसमें जीवन नहीं है, मरणशील तत्व उसके ऊपर हावी हैं, जीवनशील तत्व वहां पर नहीं है।** इसलिए स्थिति, आज की परिस्थिति क्या है? इस परिस्थिति से अगली परिस्थिति क्या होगी? इस अगली परिस्थिति से अगली परिस्थिति क्या होगी, उस अगली परिस्थिति में हम कैसे जाएंगे, कैसे आगे बढ़ेंगे? इस पर हमारा विश्वास जमना चाहिए। इस पर हमारा तर्क जमना चाहिए, इसके ऊपर हमारा विचार जमना चाहिए। जब तक इस पर हमारा तर्क और विचार नहीं जमेगा, तब तक आज की स्थिति से, परिस्थिति से मुक्ति नहीं होना है। और नियति मायने स्थिर, नियति मायने मृत्यु, नियति मायने जड़। परंतु जो मर जाता है, उसकी कोई परवाह नहीं है। हम भी मर जाएंगे कोई परवाह नहीं। मैं मर जाऊंगा तो मेरी लाश यहां पड़ी रहेगी। लाश यहां पड़ी रहेगी, तो इतनी बदबू आएगी साहब, कि इस मोहल्ले वालों का यहां रहना मुश्किल हो जाएगा। यह इसलिए चूंकि **नियति पर मृत्यु हावी है, जिन समूहों ने नियति पर विश्वास कर लिया है उनके लिए समस्या नहीं है, परंतु उनके आसपास रहने वालों के लिए बहुत बड़ी समस्या है।** इस समय जीवनशील तत्वों का मरणशील तत्वों पर हावी होना ज़रूरी है। जहां पर शोषण है, अत्याचार है, अन्याय है, वहां पर मरणशील तत्व हावी हैं, और जहां पर लड़ाई है, संघर्ष है, आगे बढ़ने की तमन्ना है, आशा है, उम्मीद है, वहां पर जीवनशील तत्व हावी हैं। वह कदम-कदम कूच करता है, आगे बढ़ता है, और एक दिन वह विजय की मंजिल पर जा पहुंचता है।

जमीन का सवाल

साथियों, इन बातों पर चर्चा करते समय, इन भ्रांतियों के बारे में विचार करने के बाद अब हमें उन मुद्दों पर चर्चा करनी चाहिए, जिसके कारण छत्तीसगढ़ की जनता कष्ट भोग रही है। जिन विचारों के ज़रिए फिर से भ्रांतियां फैलाई जा रही हैं, उन पर स्पष्ट चर्चा होनी चाहिए। आपके सामने जमीन का सवाल भी आया है। आज इस इलाके में जमीन के बारे में बातचीत करूं। राजनांदगांव का जो संसद सदस्य है, पूरे दुर्ग शहर की सभी जमीन उसके कब्जे में है। दुर्ग के कलेक्टर साहब उस दिन मुझे बता रहे थे कि एक दिन श्री धर्मपाल गुप्ता ने उन्हें बताया कि जो कलेक्ट्रेट है, कलेक्टर महोदय का जो बंगला है, वह भी उनके पूर्वजों की जमीन पर है। तो मैंने उनको कहा, 'भैया, तुम सरकार के ऊपर लगान-ठगान लगाओ, किरायेदार हो, लगान दो।' ऐसी कोई जमीन बाकी नहीं है जो धर्मपाल गुप्ता के पास नहीं है, जो भाजपा के बहुत बड़े नेता हैं। उसके पहले कोई दूसरी पार्टी में थे। दल-बदल करके वे अभी इस पार्टी में हैं। सारे दुर्ग की जमीन उनके कब्जे में है। हमारे जूदेव साहब हैं, राजा महाराजा जी, उनके पास कितनी जमीन है। आप लोग जो उनके इलाके (जिला रायगढ़) से आए हैं, अच्छी तरह से बता सकते हैं, हजारों एकड़ जमीन उनके पास है। और कुछ मठ हैं, जैसे नादिया का मठ। ऐसे बहुत से मठ हैं, वानखेड़ा का मठ है, भद्राचलम् का मठ है और इन मठों के नाम से बहुत सारी जमीन है। मैंने सुना है कि सीलिंग एक्ट से बचने के लिए कहीं-कहीं पर कुत्तों और बिल्लियों के नाम से भी जमीन है। जो बच्चा पैदा भी नहीं हुआ, उसके नाम से भी जमीन है। तो जमीन की हालत इतनी खतरनाक है।

देश के अंदर जो अच्छी जमीन है और विशेष रूप से शहर के किनारे जमीन है। दुर्ग, राजनांदगांव, रायपुर, बिलासपुर, किसी भी आसपास के शहर में देखेंगे कि आजकल वहां पर एग्रीकल्चर फार्म हैं। वहां पर देखेंगे कि कहीं पर गन्ना लगा हुआ, कहीं कुछ लगा हुआ है। हर प्रकार की फसल वहां पर हो रही है। उनके सामने फलों की छोटी-मोटी

दुकानें भी आपको मिल जाएंगी। तो यह फार्म हाउस की बात है। हमारे यहां के सबसे बड़े नेता रायपुर शहर के विद्याचरण जी शुक्ल, उनका फार्म हाऊस अगर आप देखेंगे तो आपका दिल और दिमाग बिल्कुल खुश हो जाएगा कि ऐसा भी कोई मुकाम है। इस फार्म हाऊस का चक्कर भी बहुत बड़ी बात है। इन बड़ी-बड़ी जमीनों के मालिकों ने कभी नांगर (हल) की मुठिया नहीं पकड़ी, वे जानते नहीं हैं, उनमें से कोई भी नहीं जानता। और फिर रायपुर शहर में ऐसे कई मोहल्ले हैं, जहां रहने वालों की जमीन बेमेतरा में है, कवर्धा में है, राजनांदगांव में है, फलाना जगह में है और सब रहते हैं रायपुर शहर में एक विशेष पारा के अंदर। छत्तीसगढ़ के कोने-कोने में जो जमींदार हैं, वे सब शहरों में रहकर कैसे गांवों से कमाई कर रहे हैं, वह भी आप लोगों को कुछ-न-कुछ खबर रखना है। यह जो जमीन का सवाल है, जो हमारे सामाजिक कार्यकर्त्ताओं ने बार-बार गांव-गांव जाकर उठाया है। परंतु एक बात का उन्होंने आज तक ख्याल नहीं किया। इस जमीन से, इन जमीन पुत्रों की, धरती पुत्रों की भी एक आवाज उठी है। एक नारा पैदा हुआ है -

''छत्तीसगढ़ छत्तीसगढ़ियों का, नहीं किसी के बाप का।''

अब ये छत्तीसगढ़िया कौन हैं, भैया? एक हमर जूदेव साहब राजा-महाराजा हैं। औ धर्मपाल गुप्ता जी, जेकर पास अढ़ाई-तीन हजार एकड़ जमीन है - इही मन छत्तीसगढ़िया हैं! और ये छत्तीसगढ़ और छत्तीसगढ़िया के मतलब का होथे? ये छत्तीसगढ़िया औ छत्तीसगढ़ी नो हे - ये दोनों के अंदर झगड़ा करो! जैसे हमर संगवारी हा बताईस, अच्छा ढंग से बताईस, कि हमर मजदूर परिवार है, एक जात है। हमन ला ये बात जात के रूप में, बिरादरी के रूप मा बोलना चाहिए। जात ही नहीं गोत (गोत्र) भी एक है। दो गोत हैं दुनिया के अंदर में - एक है बघवा (बाघ) गोतियार औ एक है आदमी गोतियार। लहू पिवैया मन के जात है बघवा गोतियार औ जे मन मेहनत करके खाथैं, मजदूर मन ओ मन आदमी गोतियार, मनखे गोतियार। यहां पर हम सभी एक जाति के, एक गोत्र के लोग बैठे हैं। हमारे बीच में फूट डालने के लिए, भेद करने के

लिए उन्होंने इस तरह का नारा उछाला है। हम भी एक नारा देते हैं, हम अपना नारा बाद में बताएंगे।

मजदूर यूनियनों का गलत रास्ता

परंतु इसके साथ दूसरी बात भी आपके सामने रखना चाहूंगा। औद्योगिक क्षेत्र के अंदर, जैसे भिलाई, राजनांदगांव, दल्ली राजहरा, कोरबा या हिर्री, नंदिनी, बैलाडीला, अभनपुर वगैरह के मजदूर इलाकों में सिर्फ एक बात की चर्चा है कि हमारी फलानी मांग पूरी होनी चाहिए। दो मांगें तो हमारी बहुत पापुलर मांगें हैं - एक, वेतन में बढ़ोत्तरी करो; दूसरा, बोनस दो। इंकलाब जिंदाबाद। इससे क्या परिवर्तन होगा? गुणात्मक परिवर्तन, क्रांति या इंकलाब? उर्दू मा इंकलाब कथैं औ हिन्दी मा ओला क्रांति कथैं - मतलब ये के गुणात्मक परिवर्तन। और मांग का चलत हे? कि '10 प्रतिशत बोनस देना होगा, देना होगा।' तो का 10 प्रतिशत बोनस मिले के बाद में हमर देश के अंदर में गुणात्मक परिवर्तन आ जाही? मजदूर जो हे ओ कोई मालिक बन जाही? जो लूट-खसोट करैया हे ओ गरीब आदमी बन जाही? वेतन बढ़ोत्तरी के बाद में हमारे सारे दुखः हट जाही? आज ट्रेड यूनियनों के पास सिर्फ एक मुद्दा बचा हुआ है - वेतन में बढ़ोत्तरी करो और दूसरा जो है बोनस। छत्तीसगढ़ में हमन ओला 'भुनस' कथन औ भुनस बोल देबोन तहां ले हमर दिल अईसन खुश हो जाथन। औ एकाध परसेंट बढ़ गीस ते ठीक! अगर दस-बीस रुपया चंदा देना है तो फटाफट कर देबोन। 'अच्छा काम करेहे हमर नेता मन जो दो-एक परसेंट बोनस बढ़ा के लान दीस। हमर बोनस बढ़ गीस तो बस हमर क्रांति होगे।' सालभर ट्रेड यूनियन और क्या काम करेगी? सालभर वह एक काम करेगी, वह चार्जशीट का जवाब देगी। मालिक लोग आकर कहते हैं कि तुम काम नहीं करते हो, इसलिए भाग जाओ। तब मालिक, मजदूर को चार्जशीट दे देते हैं। फिर मजदूर चार्जशीट लेकर नेता के पास आते हैं, बताते हैं कि इसमें लिखा हैं कि 72 घंटे में जवाब देना है, 24 घंटे में जवाब देना है। अब 24 घंटे, 72 घंटे, 3 दिन, 7 दिन बैठकर हम इसका जवाब देते हैं।

मजदूर कैसी झोपड़ी में रहते हैं? मजदूरों के लिए पीने के पानी की व्यवस्था है कि नहीं? मजदूरों के इलाके में अस्पताल की सुविधा है कि नहीं? मजदूरों के बच्चों की पढ़ाई-लिखाई की व्यवस्था है कि नहीं? मजदूरों के बच्चे कौन से विचार लेकर आगे चलेंगे। वीडियो फिल्म, ब्लू फिल्म देख-देखकर ढिशुम-ढिशुम करके अभिताभ बच्चन की नकल करते रहें, या दूसरी बात करें? यह बात हमारे ट्रेड यूनियन नेताओं के मन में है कि नहीं? मजदूर शराब पीकर गली में पड़े रहते हैं। हमारे फागूराम जी ने एक गाना बनाया है। इस गाने में वे कहते हैं कि शराबी के मुंह में तो कुत्ता भी पेशाब कर देता है। यह बात कौन देखेगा कि मजदूर नेता अब काम करते हैं या नहीं? यहां मजदूर कहां से आए हैं? वे गांवों से आए हैं। भूमिहीन होकर गांव के मजदूर जो शहर में आकर मजदूर बने हैं, उद्योगों में काम करते हैं, उनके सगे लोग गांव में रहते हैं, रिश्तेदार गांव में रहते हैं, उसके रिश्तेदारों के साथ उसका रिश्ता टूट चुका है, इस पर ट्रेड यूनियन ध्यान देती है कि नहीं देती है?

मशीनीकरण का प्रश्न

इससे भी बड़ी एक खतरनाक बात होती है जो सिर्फ मजदूरों के ऊपर नहीं होती है, पूरे देश पर जिसका असर होता है कि उस उत्पादन व्यवस्था में कौन-सी तकनालाजी की व्यवस्था लागू हो सकती है? कौन-सी तकनालाजी वहां पर जारी है। वह तकनालाजी इस देश के सुधार के लिए है या देश के लिए खतरनाक है? वह मशीन हमारे देश के फायदे के लिए है कि नहीं? भिलाई मा एक ठन मशीन है। ओकर नाम है आई. बी. एम. गिनती मशीन। करीब पच्चीस-तीस करोड़ रुपया ओकर कीमत है। ओ गिनती बहुत फटाफट लगाथे, अतिक जल्दी लगाथे कि तुम सोच नहीं सको। लाखों-करोड़ों के गिनती ओ फटाफट कर देथे। एक सेकंड के कई हिस्सा मा कर दिही। एक दिन जो है, ओ मशीन के एकठन छोटा-सा पुर्जा, ओकर एकठन जो स्क्रू है, वो हर बिगड़गे। अब जैसे ओ कंप्यूटर के एकठन स्क्रू ढीला होगे - तहाने ओ मशीन के दिमाग घलो खराब होगे। अब जब दिमाग खराब होगे, तब ओ

हम मन ला उल्टा-पुल्टा बतावत है। हम जानत हन दो गुणा दो कातिक होथे - हम जानत हन दो गुणा दो चार होथे। पर ओ हर का लिखथ हे? अस्सी लिख देथे। ओकर दिमाग ऐसते खराब हो जाथे। तो अफसर लोगों ने अमरीका की कंपनी से कहा कि इस मशीन का पुर्जा बदल दो। तो अमरीका वाले बोले, 'यह तो पुराने मॉडल की मशीन है, इसके पुर्जे हमारे देश में नहीं मिलते। उस मशीन को फेंक दो। लेना हो तो नए मॉडल की मशीन खरीद लो, उसकी कीमत पचास करोड़ रुपए है।' अब जाओ भई। ओकर दिमाग के एकठन स्क्रू के खातिर ओकर दिमाग खराब होगे - पचास करोड़ रुपया पानी मा बोहागे! पचास करोड़ रुपया फालतू में चला गया। आज यहां के मैनेजमेंट के लोग इस प्रकार की तकनालाजी का आयात कर रहे हैं, और देशद्रोह कर रहे हैं। जनता दल के कुछ नेताओं से जो आज मंत्री पद पर हैं, उनसे मैंने व्यक्तिगत रूप में चर्चा की थी, तब उन दिनों में उन्होंने बताया था कि इस प्रकार से विदेशी कंपनियां हमारे देश को खा रही हैं, लूट रही हैं। परंतु आज सत्ता में आने के बाद उन्होंने इस बात को भुला दिया।

आज जो नई औद्योगिक नीति की बात हो रही है, पता नहीं क्या औद्योगिक नीति है। राजीव गांधी की औद्योगिक नीति थी, तकनीक के बारे में। उनकी नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। वह नीति आज भी जारी है, जोरदार ढंग से जारी है। यहां बस्तर से बहुत से साथी आए हैं वे जानते होंगे कि बस्तर में रावघाट नाम की जगह है, वहां लोहा पत्थर है। रावघाट से लोहा पत्थर भिलाई आने वाला है। पर्यावरण मंत्री श्रीमती मेनका गांधी ने इसकी अनुमति नहीं दी, इसलिए भिलाई के अफसर उनसे बहुत नाराज हैं। वे कहते हैं कि मेनका गांधी यहां का विकास नहीं चाहती हैं। भिलाई के अफसर बहुत जोर लगा रहे हैं कि अनुमति जल्दी मिल जाए। बस्तर के इतने पास होते हुए भी आप तो रावघाट गए नहीं, परंतु अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, कोरिया और जापान, इन पांच देशों के लोग रावघाट में डेरा डाले हुए हैं। अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर वहां का ठेका होने वाला है। वहां पर मशीनीकरण की कौन-सी प्रक्रिया लागू होगी? कौन-सी तकनीक वहां लागू होगी? जिस तकनीक के ज़रिए

वहां से लोहा पत्थर निकाला जाएगा और भिलाई कारखाने में लाया जाएगा, उसके बारे में दुनिया भर को मालूम है। हम बस्तर के आदमी मन, छत्तीसगढ़ के आदमी मन, रावघाट ला नहीं देखे हन; और ये आस्ट्रेलिया वाले मन, कनाडा, कोरिया औ जापान वाले मन, ये मन सब देख डारिन हे। योजना बनात हे। एक अफसर से मेरी बात हुई। मैंने उनको बताया कि 'भई, मशीनीकरण के बाद में यह उत्पादन लागत कम होनी चाहिए। तुम लोग बार-बार यह बोलते हो। परंतु गलत बात बोलते हो। गलत आंकड़े पेश करते हो। असल में ये जो मशीन का दिमाग खराब हो जाता है, उसकी बात तुम लोग कभी सोचते नहीं हो। तुम जो बात रखते हो, उससे कई गुना ज्यादा डिप्रीसिएशन (घिसाई) होता है।'

तकनीक में मैन्युअल (मानवीकृत) शक्ति से जो काम होता है, हमारे देश में वह सबसे बढ़िया किस्म का है। उसमें उत्पादन लागत भी कम है। क्वालिटी में भी आगे है। बैलाडीला का माल दस साल तक 'मैन्युअल प्रोसेस' यानी मानवीकृत खनन के ज़रिए लिया है। मनुष्य जो काम करता है, उसकी क्वालिटी में कोई फर्क, कोई कमी नहीं है। मशीन से अच्छा माल हम देते हैं। इसका प्रमाण है कोयला। जब कोयला खदानों का मशीनीकरण नहीं हुआ था, तब कोयले की क्वालिटी इतनी खराब नहीं थी, जितनी खराब अब हो गई है। फिर तकनीक की बात तुम लोग क्यों करते हो? तुम लोग बोलो कि हम मशीन की बात करते हैं। **तकनीक और मशीन दो अलग-अलग बाते हैं। तकनीक ऐसी है कि इस तकनीक में तुम घुस गए हो - अभिमन्यु जैसे। तुम घुस सकते हो, परंतु उससे निकलने का रास्ता तुमको मालूम नहीं है।** इसलिए अभिमन्यु का जो हाल होता है, उसकी मृत्यु होती है, उसी प्रकार तुम देश की जनता के करोड़ों रुपयों का नुकसान कर रहे हो, हत्या कर रहे हो, देश की जनता के विश्वास की तुम हत्या कर रहे हो। इंसान की ज़रूरत की तुम हत्या कर रहे हो और देश के लिए एक नई समस्या पैदा कर रहे हो। तुम मरणशील तत्वों को हावी कर रहे हो, तुम जीवनशील तत्वों के ऊपर चाकू चला रहे हो, तलवार चला रहे हो।

दो मुद्दे आपके सामने हैं। एक है, जमीन का सवाल और दूसरा मुद्दा आपके सामने है मशीनीकरण का सवाल। अब ये जमीन और मशीनीकरण, इन दो बातों पर तथा औद्योगिक नीति के बारे में आपके दिमाग में सफाई होनी चाहिए। आपके दिमाग में कोई भ्रांति नहीं होनी चाहिए - जो राजनीति, जमीन से धरती पुत्रों की राजनीति, जमीन से जुड़ी धरती पुत्रों की बात - उसके बारे में कोई भ्रांति नहीं होनी चाहिए। 'छत्तीसगढ़ छत्तीसगढ़ियों का', इस बात से आपको घृणा करनी चाहिए। और दूसरी जो है सिर्फ अर्थवाद - सिर्फ आर्थिक मुद्दों पर ट्रेड यूनियन की बात को ले जाना, इससे भी आपको घृणा करनी चाहिए। ये राजनीति की दो बातें है। सी. पी. एम., सी. पी. आई. के लोग, जो मजदूर बेल्ट के अंदर काम कर रहे हैं, लगातार इन बातों को लेकर चल रहे हैं और कांग्रेस और भाजपा उनके साथ में है। और दूसरी जो नई किस्म की शक्ति है, जो जनता के अंदर भेद-भाव करने के लिए, एकता को तोड़ने के लिए, जनता की आवाज को खत्म करने के लिए, नाश करने के लिए, उन्होंने फूट की राजनीति के बीज बोए हैं। जो फूट की राजनीति बोता है, उनकी बात से भी आपको घृणा करनी चाहिए। फिर नई बात क्या है? घृणा तो करेंगे भई। फिर विकल्प क्या है? हम सब कहेंगे एक आवाज से - 'लुटेरों की जागीर नहीं, छत्तीसगढ़ हमारा है।' लुटेरों की जागीर नहीं, शोषकों की जागीर नहीं, छत्तीसगढ़ किसका है? हमारा है। हमारा है छत्तीसगढ़। मजदूरों का, किसानों का, मेहनतकशों का, ईमानदारों का, देशप्रेमियों का और बाकी लोगों का - पर तुम्हारा नहीं है। बताओ जी, तुम्हारी बहुत जमीन है, तुम कहां के छत्तीसगढ़िया हो, तुम तो खून पिवैया हो - मनखे के लहू पिवैया, तुम नहीं हो छत्तीसगढ़िया! छत्तीसगढ़िया मन जो है मनखे के लहू नहीं पिए। इंसान का लहू नहीं पीते हैं, छत्तीसगढ़िया लोग। मेहनतकश, देशप्रेमी किसी का खून नहीं पीता। तो तुम्हारा छत्तीसगढ़ जब है, तो हमारा नहीं है। और हमारा छत्तीसगढ़ जब है, तो तुम्हारा नहीं है। दोनों के बीच बहुत बड़ी और स्पष्ट भेद की रेखा है, जो एक दूसरे की अलग पहचान

करती है। इसलिए उनका नारा जो एकता को तोड़ने वाला नारा है, उसको हम नहीं लगाते। हम नए छत्तीसगढ़ की बात करते हैं - 'लुटेरों की जागीर नहीं, छत्तीसगढ़ हमारा है', यह नारा लगाते है। ठीक है कि गलत है? यही नारा हमें लगाना है। और सिर्फ आर्थिक मांग ही नहीं, तकनीक की बात भी करो।

भिलाई के मजदूर साथी आए हैं। मेरे सामने की बात है, जब मैं भिलाई में नौकरी करता था, जब मैं भिलाई में एक मजदूर था। उस समय सिम्पलेक्स कंपनी के पास सिर्फ दो लेथ मशीनें थीं। उसके बाद मैं देखता हूं, आज सिम्पलेक्स के पास इतनी पूंजी है, इतनी अधिक पूंजी है, अरबों रुपयों की पूंजी! वह चीन के साथ मिलकर, बैलाडीला के पास एक स्पंज आयरन का कारखाना बनाने वाला है, जिसमें एक सौ पचास करोड़ रुपए से भी ज्यादा पैसा लगाने वाला है। आज से तीस साल पहले जिसके पास सिर्फ दो लेथ मशीनें थीं, आज उसके पास एक लोहा कारखाना, इस्पात कारखाना लगाने की ताकत आ गई है। भिलाई में कारखाना है, फलाना जगह में कारखाना है, अहमदाबाद में कारखाना है। दूसरी तरफ बीके कंपनी आपके सामने है। चंडीगढ़ में बिल्डिंग का ठेका - बीके कंपनी, बंगलौर में बिल्डिंग का ठेका - बीके कंपनी, भोपाल में बिल्डिंग का ठेका - बीके कंपनी। बोकारो, दुर्गापुर, राउरकेला में बिल्डिंग का ठेका - बीके कंपनी। देश के अंदर दो बड़े बिल्डिंग ठेकेदार हैं। एक हैं - एशियाड बनाने वाले - जय प्रकाश। और दूसरे हैं - ये आपके बीके कंपनी - बक्तयार सिंह। और क्या थे ये, आप मजदूर साथी नहीं जानते, आप में से बहुत से लोग तो शायद उस समय पैदा भी नहीं हुए थे। परंतु हम जानते हैं, उनके पास में कुछ नहीं था। इन्होंने सेक्टर 4 में जब ठेका लिया, उस समय उनके पास में कुछ भी नहीं था। पेटी ठेकेदारी से उनका काम शुरू हुआ। पेटी ठेकेदार आज देश के सबसे बड़े ठेकेदार हो गए. . . . . . आप बताइए कितना पैसा कमाया, इन भिलाई के लोगों ने? तो ये जो दो वर्ग हैं, यहां पर दोनों जगहों में - जमीन के सवाल पर, उद्योग के सवाल पर, उद्योगपतियों के सवाल पर

- अगर हमारी बात स्पष्ट हो जाए, तो गलत विचारधारा से, भ्रांतियों से, मरणशील तत्वों के विचार से हम मुक्त हो जाएंगे। तब जीवनशील तत्व हावी होगा, शहीदों की विचारधारा आगे बढ़ेगी, मुक्ति का रास्ता मजबूत होगा। तो, ये जो मुद्दे हैं, इन दो मुद्दों की राजनीति को समझने के बाद अपना कार्यक्रम हमें बनाना होगा।

पशुशक्ति और जनशक्ति

कार्यक्रम बनाते समय आपको इन बातों का ख्याल रखना होगा। शक्ति किसके पास है? शक्ति दो जगह में है। आप बोलेंगे कहां-कहां है, कैसे दो जगह हो सकती है? एक ही जगह होनी चाहिए। नहीं, दो जगह है। एक जगह है पशुशक्ति। पशुशक्ति सत्ता में है, जो सत्ता आपको दिखती है, शासन करती है आपके ऊपर। और दूसरी जगह एक शक्ति है, वह है जनशक्ति। जहां पर जनशक्ति कमजोर हैं, वहां पर मरणशील तत्व हावी हैं, जीवनशील तत्व वहां पर मार खाते हैं। और जहां पर जनशक्ति मजबूत है, वहां पशुशक्ति जो है, मरणशील तत्व जो हैं, वे गिड़गिड़ाते हैं।

छत्तीसगढ़ मा गोठियाथे (बोलते हैं) कि 'बरपेली (जोर) के बात है।' अगर तोर बरपेली चल जाही तो मोर बरपेली नहीं चल सके। मोर दुसमन के अगर बरपेली चल जाही तो मोर बरपेली नहीं चल सके। और मोर बरपेली अगर नहीं चलही तो फिर मरणशील तत्व हमर ऊपर हावी हो जाही, मृत्यु हमर ऊपर हावी हो जाही और जीवन हमर से दूर हो जाही, उम्मीद और आशा हमर से दूर हो जाही। सपना के मृत्यु हो जाही, तो इसलिए संगवारी जो बात है - ये बरपेली प्रतिष्ठित करने की बात है। जनशक्ति को प्रतिष्ठित करने की बात है। जनशक्ति प्रतिष्ठित करने के उपाय सोचने की बात है।

कोन्टा में, मोंगरा में, कवर्धा में, सामाजिक कार्यकत्ताओं ने जंगल वालों के खिलाफ भूख हड़ताल की तो उन्हें नक्सलाइट कह कर गिरफ्तार कर लिया। संविधान में ये बात कहीं पर नहीं लिखी गई कि किसी को

तुम जान से मार सकते हो, किसी को जबर्दस्ती जेल में बंद कर सकते हो, और हमारे सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के बारे में ये बात लागू ही नहीं होती। मैं उनको व्यक्तिगत रूप से जानता हूं कि वे नक्सलाइट नहीं हैं। उस विचार के आसपास नहीं हैं। तो क्यों उनको नक्सलाइट बोलकर गिरफ्तार किया जाता है? इसलिए कि हमारे इलाके में मरणशील तत्व हावी हैं, जीवनशील तत्व यहां पर किसी जगह नहीं दिखते। संगठन नहीं है, एकता नहीं है, मजबूत एकता नहीं है।

छत्तीसगढ़ में अब नक्सलाइट कहकर किसी को गिरफ्तार करना आसान नहीं होगा क्योंकि छत्तीसगढ़ में ऐसी जनशक्ति पैदा हो रही है, कवर्धा में, चौकी में, नारायणपुर में, कोंड़ागांव में, कांकेर में, सरगुजा और रायगढ़ में पैदा हो रही है। भिलाई और दल्ली राजहरा, राजनांदगांव और कोरबा के मजदूर इलाकों में पैदा हो रही है। इन सभी स्थानों में जनशक्ति स्थापित होने जा रही है। प्रभावी होने जा रही है इसलिए कोई फिक्र की बात नहीं है, एस. पी. महोदय, तुम इस प्रकार की एक-दो और घटनाएं होने दो। फिर देखना कि नक्सलाइट कैसे होते हैं? और क्या काम करते हैं! जब नदी से पूर का पानी निकलेगा, जब बाढ़ आएगी, तो पूरा कचरा साफ हो जाएगा। कोई गंदगी नहीं बचेगी। जब बाढ़ का पानी आएगा, उस समय तुम मत रोना कि हमने गलती की, एक सामाजिक कार्यकर्त्ता को नक्सलाइट बोलकर जो बंद कर दिया था। परंतु हमको इतना सुनने से खुश नहीं होना चाहिए। नदी का पानी बारिश में आकर चला जाएगा, उसके बाद समुद्र में चला जाएगा। फिर हमारी नदी सूख जाएगी। इस पानी को रोकने की बात भी सोचनी चाहिए, तो इस पानी को रोकना होगा। कैसे रोकेंगे आप? बांध बनाना होगा, तब जाकर रुकेगा। एकता बनानी होगी, तब जाकर रुकेगा। मजदूर, किसान, बुद्धिजीवी, देशप्रेमी इन सभी वर्गों की एकता बनानी होगी, तब जाकर यह शक्ति, जनशक्ति जो है, नदी के पानी को रोक सकती है। और उस काम को आप लोग कर रहे हो, परंतु और मुस्तैदी

से करना होगा, और तेजी से करना होगा। हिम्मत के साथ करना होगा, बहादुरी के साथ करना होगा।

हमारे भगत सिंह से लेकर रामाधीन गोंड तक, रामाधीन गोंड से अभनपुर के रमेश परेरा तक, इन्होंने जो कुर्बानी दी है, वे सभी डरे नहीं। आज इसीलिए लोकसत्ता स्थापित होने जा रही है, जनशक्ति स्थापित होने जा रही है। जनशक्ति को नष्ट करने के लिए लोग तोड़-फोड़ करेंगे, आतंक फैलाएंगे, सांप्रदायिकता, जाति-प्रांत की बातें करके वे हमारे अंदर फूट डालने की कोशिश करेंगे। हम किसी को फूट नहीं डालने देंगे। प्रण है हमारा। आप सब का प्रण है, उन्हें फूट के बीज बोने नहीं देंगे। आप फिर एकता के बीज बोयेंगे। जब हम एकता के बीज बोयेंगे, तो आज जो यह पानी चल रहा है, बीच-बीच में बारिश में दिखता है, यानी हम जब देश का काम करेंगे, उस समय वह पानी और अधिक दिखेगा। हमें इस पानी को रोकना होगा। जहां पर इस पानी की ज़रूरत है, वहीं पर रोकना होगा। अगर कवर्धा में अत्याचार हो रहा है तो रायपुर से स्विच दब जाएगा। लोकसत्ता कवर्धा में पहुंच जाएगी और कहेगी, 'अरे देखो हम हजारों की तादाद में पशुशक्ति का मुकाबला करने के लिए पहुंच चुके हैं। कौन है पशुशक्ति? आओ, जनशक्ति का मुकाबला करो, लोकसत्ता का मुकाबला करो।'

देखना, ओ खेती के अंदर में एक फरिया (पुतला) देखे हो न? जब किसान खेती के अंदर में फरिया टांग देत हे, तो जितना चिड़ियां हैं, पंछी हैं, वो सोचथे, 'अरे ये तो कोई आदमी होगा।' बेचारी डर कर खेत में नहीं आती। मगर जब कोई घेख्खर चिरई (ढीठ चिड़िया) आ गई तो का होही? चिरई ला कुछु नई होय। फरिया तो खुदे हिलत हे। चिरई खा-खुआ के चल देत हे। तो जतका वर्दी वाले मन हे औ जो आतंक औ खौफ़ दिखाने वाले गुंडामन हे वो फरिया के समान हैं। जब मैं भूख हड़ताल पर बैठा था - अभी हाल में ए. सी. सी. के सामने, उस समय मेरे को मारने वाले वहां थे। तो कलेक्टर एवं एस. पी तक ने कहा कि

नियोगीजी आप वहां पर मत जाना, आपकी जान खतरे में है। कई साथियों को मालूम है, इसके पहले भी गुंडा लोग लाठी चला चुके हैं। हमारे घोषाल दादा और कई साथियों के ऊपर लाठियां बरसाई थीं। तो हमने बोला, ठीक है, मरना तो है। कौन आया है, अमर होकर इस दुनिया में? इसलिए कल भी मरना है, आज भी मरना है। और अपनी उम्र तो काफी हो गई है, हमारे देश के लोगों की औसत उम्र करीब-करीब हम प्राप्त कर चुके हैं। तो इसलिए जीने का कोई लालच नहीं है। परंतु अच्छा काम करने के लिए, समाज के अंदर लोकसत्ता स्थापित करने के लिए, जनतंत्र स्थापित करने के लिए कई साथियों ने कुर्बानी दी है। मैं तो उतना भी नहीं दे पाया हूं। मेरा एक ही सपना है कि मैं, अपने उन साथियों, जो शहीदों का रास्ता अपनाकर कुर्बानी के रास्ते पर चले हैं, और देश को मुक्ति के गीत सुनाकर गए हैं, उनका जीवन अगर मुझे मिल जाए तो बहुत अच्छी बात है। इससे बड़ा पुण्य क्या हो सकता है? केदारनाथ, बद्रीनाथ जाने से भी नहीं हो सकता है, जो शहीद की मृत्यु में हो सकता है? इसलिए हमने उनको बता दिया। ठीक है, जिन्हें जो करना है कर लें, मैं तो भूख हड़ताल पर बैठा हूं। उस समय भी पशुशक्ति आई, परंतु लोकसत्ता वहां पर स्थापित थी। वहां पर ए. सी. सी. के मजदूर, दूसरे इलाके के मजदूर लोग तीन बजे रात भी घर जाने के लिए तैयार नहीं थे, बड़ा-बड़ा डंडा लेकर खड़े हो गए। मैंने कहा, कोई ज़रूरत नहीं, आप लोग घर चले जाइए। अन्याय के पास कोई शक्ति नहीं है, न्याय के पास शक्ति है। नीति के पास शक्ति है। नीति का मुकाबला, न्याय का मुकाबला, अन्याय नहीं कर सकता है। मुझे कुछ नहीं होगा आप देख लेना। बहुत मुश्किल से अपनी बहनों और भाई लोगों को हटाया। कुछ नहीं हुआ। देखा, कुछ नहीं हुआ।

पशुशक्ति खेत के अंदर हिलने वाले पुतले के समान, पंछियों को डराने वाले पुतले के समान ही है। जब आप पहुंच जाओगे तो देखोगे कि गुंडों के पास कोई ताकत नहीं है। गुंडा क्या पुलिस के पास कोई ताकत नहीं है। दुनिया में कोई शक्ति नहीं है जो लोकशक्ति का मुकाबला कर

सकती है, जनशक्ति का मुकाबला कर सकती है। इसलिए डरने की कोई बात नहीं है। दिल खोल कर चलो। रायपुर से जिस दिन स्विच दबेगा तो कवर्धा हो, चाहे नारायणपुर हो, हर जगह लोकसत्ता प्रभावी हो जाएगी। मरणशील तत्वों को मिटा दिया जाएगा, कब्र के अंदर घुसा दिया जाएगा, गाड़ दिया जाएगा। जीवनशील तत्व वहां पर छाती फुलाकर खड़ा हो जाएगा। होगा, ऐसा ही होगा। ऐसी उम्मीद है, ऐसी तमन्ना है, मेरा और आपका सपना है। इसलिए अब गांव के अंदर इसी बात को लेकर जाना है। जो शक्ति का पुंज है, वह कहां है छत्तीसगढ़ की शक्ति का पुंज? कौन शक्ति? पशुशक्ति। पशुशक्ति का किला कहां है? आप बोलेंगे, रायपुर में। रायपुर में कुछ नहीं है, रायपुर में जो लोग हैं, चाहे वे किसी भी पार्टी के हों, ये सारे लोग भिलाई के पूंजीपतियों के दलाल हैं। तो ये जो दलाल हैं, वो यहां निवास करते हैं और कहते हैं कि हम छत्तीसगढ़ के नेता हैं। परंतु उनके पास में जो असली बात है, असली जो ताकत है, वह भिलाई वालों के पास है। पूंजी उनके पास है। और ये पूंजीपति लोग जो हैं, वहां पर हावी हैं। वे दिखा रहे हैं कि हम हावी हैं। तो इसलिए, छत्तीसगढ़ के नौजवान साथियों, छत्तीसगढ़ के सामाजिक कार्यकर्त्ता साथियों, मेरे दोस्तों, आज आपको इस बात को, इस पैगाम को, आपको गांवों में ले जाना होगा।

मैं एक उक्ति कहने का लोभ रोक नहीं पा रहा हूं। जयप्रकाश नारायण जी ने पटना में एक भाषण दिया था, आज से बहुत साल पहले। उन्होंने कहा था कि पटना शहर में तानाशाही हावी है। और इसलिए बिहार की जनता को खड़ा होना होगा - हर गांव से, हर शहर से, हर इलाके से आना होगा। पटना शहर में आकर बैठना होगा। उन्होंने यह बात उठाई और बिहार में एक आंदोलन का बिगुल फूंक दिया। तब देश के अंदर नवचेतना पैदा हो गई। आज मैं आपसे कहता हूं, साथी, उस उक्ति को लेकर फिर मैं आपकी शरण में आया हूं। छत्तीसगढ़ के शोषण की जड़ इस भिलाई इस्पात कारखाने में ही है, जिसमें रहने वाले मालिक और मैनेजमेंट के लोगों ने पूंजीपतियों के साथ मिलकर छत्तीसगढ़ के शोषण

की व्यवस्था को जारी रखा है, इस कुव्यवस्था को नेतृत्व दिया है। उनके शहर में छाती फुलाकर छत्तीसगढ़ के हर गांव के - नारायणपुर के, अंबिकापुर के, सरगुजा के, मैनपाट इलाके के, बिलासपुर के - सारे इलाके के साथियों को, आपको आना होगा भिलाई में। एक दिन इस बात को तय करने के लिए। और उस दिन, सारे नवयुवकों को अपने-अपने गांव से - चार हजार गांव हैं - वहां से बीस-बीस लोग होंगे, तो 80 हजार लोग होंगे और भिलाई के 80 हजार साथी वहां पर बैठे हुए होंगे, आपका स्वागत करने के लिए। इस प्रकार से लाखों की शक्ति पैदा होगी, जनशक्ति पैदा होगी, जिसके सामने सिर उठाकर कोई खड़ा नहीं हो सकता। **इस लोकसत्ता के सामने पशुसत्ता को झुकना होगा, निश्चित रूप से झुकना होगा।** अब उस दिन के बारे में तय करना होगा। लोकसत्ता को कब प्रतिष्ठित किया जा सकता है? जनशक्ति को किस दिन प्रतिष्ठित किया जा सकता है? कौन सा पुनीत दिन है? अपना पंचांग देख कर उस दिन को प्रतिष्ठित करना होगा। परंतु आज, चारों ओर गांव-गांव में इस पैगाम को फैलाना होगा कि हर गांव से लाइए - 10 आदमी, 20 आदमी, 30 आदमी। और वे आएंगे। वे नवयुवक साथी क्यों आएंगे? आज छत्तीसगढ़ में कितनी बेरोजगारी है? कितने बेरोजगार लोग हैं छत्तीसगढ़ में, गांव-गांव में बेरोजगार हैं। ये सी. पी. आई. के लोग, कम्युनिस्ट पार्टी के लोग गांव वालों को कह रहे हैं, 'चलो मोंगरा बांध बनाना होगा।' क्यों? क्योंकि वहां पर काम मिलेगा। चाहे उससे 200 गांव डूब जाएं। फिर मशीनीकरण करना होगा। क्यों? हमारी बेरोजगारी दूर हो जाए। सिर्फ एक महीना मशीनीकरण का काम, फिर उनको भगा दिया जाएगा। तो चलो साथियों, आज छत्तीसगढ़ के इलाके में लोकसत्ता को प्रतिष्ठित करने का अवसर है। इस मौके पर हमें झुकना नहीं चाहिए, और एक ताकत के साथ भिलाई में पहुंचना चाहिए और लोकसत्ता के झंडे को बुलंद करना चाहिए। ठीक है न?

विशाल समुद्र का महागर्जन

तो इसलिए छत्तीसगढ़ में एक ऐसा दिन आएगा! कितने तालाब हैं छत्तीसगढ़ में? आपके गांव में तालाब हैं, सब गांव में तालाब हैं। सब गांवों के तालाब अगर एक तालाब बन जाएं, अगर ईब नदी, अरपा नदी इंद्रावती, शिवनाथ और महानदी, सारी नदियां अगर यहां पर एक हो जाएं, तो कितना पानी होगा? बहुत पानी होगा। विशाल! और उस पानी का जो समुद्र का रूप रहेगा, उससे लहरें पैदा होंगी। वे लहरें शोषण के किलों पर बार-बार धावा मारेंगी। एक बार लहर, दो बार लहर, तीन बार लहर, चार बार लहर . . .। और शोषण का किला वह धावा बार-बार संभाल नहीं सकता। वह किला टूटने वाला है। कमजोर किला है, क्योंकि उसकी नींव कमजोर है, अन्याय की नींव के ऊपर खड़ा है वह किला। वह किला टूटेगा। परंतु **छत्तीसगढ़ के सारे गावों के तालाबों का पानी चाहिए, आसपास ईब, बांगों, इंद्रावती, शंखिनी, महानदी, शिवनाथ का पानी चाहिए वहां। यह पानी अगर आएगा तो समुद्र पैदा होगा।** मगर हर इलाके से, गांव और जिले से, अगर नवयुवक आएंगे तो यह समुद्र पैदा होगा। एक महागर्जन पैदा होगा, और वह महागर्जन 'इंकलाब जिंदाबाद' का नारा लगाएगा। तो वह सही मायने में इंकलाब लाने वाली बात होगी, एक गुणात्मक परिवर्तन लाने वाली बात होगी। **और फिर युद्ध होगा, जीवन और मृत्यु का एक दूसरे के खिलाफ। जीवन लड़ेगा मृत्यु के खिलाफ, मृत्यु लड़ेगी जीवन के खिलाफ।** यह लड़ाई आपको लड़नी होगी।

स्पार्टकस की कहानी

एक कहानी है छोटी-सी, आदि विद्रोही की कहानी। स्पार्टकस का नाम का एक नेता था, वह कोई आजकल का नेता नहीं, जो लेता है। वह 'न लेने वाला' नेता था, बहादुरी करने वाला नेता था। उसने मुक्ति के गीत गाए थे। ऐसा नेता था स्पार्टकस, जो गुलामों को जंजीरों से मुक्ति दिलाना चाहता था। उनकी लड़ाई के लिए जान देता था। जब स्पार्टकस

खत्म हो गया लड़ाई में, तो उस समय गुलामों के मालिकों को पता नहीं था कि कौन है स्पार्टकस? पूछा, 'कौन है स्पार्टकस? वहां उस समय बहुत सारे युद्धबंदी थे। सब कहने लगे, 'मैं स्पार्टकस हूं? यह कहता, 'मैं स्पार्टकस हूं।' वह कहता, 'मैं स्पार्टकस हूं।' सब जगह आवाज उठती है, 'मैं स्पार्टकस हूं, मैं स्पार्टकस हूं।' हर गांव को इस प्रकार विरोध में खड़ा होना होगा। और दूसरे लोग जो जनशक्ति स्थापित करने वाले हैं - मैं फलाना गांव वाला हूं, मैं ढिमका गांव वाला हूं। और इस प्रकार से छत्तीसगढ़ का हर गांव खड़ा हो जाएगा। हर सड़क के मजदूर, बस्ती के मजदूर, झोपड़ी के मजदूर, झुग्गी-झोपड़ी के मजदूर खड़े हो जाएंगे। गांव और शहर कंधे-से-कंधा मिलाकर एक नारा बुलंद करेंगे - मुक्ति चाहिए हमें। किसको मुक्ति चाहिए? नारायणपुरा वालों को चाहिए, सरगुजा को चाहिए, मैनपाट को चाहिए, बिलासपुर वालों को चाहिए, रायपुर के लेंडी तालाब के लोगों को चाहिए। हर जगह में, हर तरह के लोगों को चाहिए। दल्ली राजहरा के मजदूरों को चाहिए, चांदीडोंगरी माईन्स के मजदूरों को चाहिए, हिर्री इलाके में चाहिए। सब जगह के लोगों को मुक्ति चाहिए। फिर देखो, कहां से आती है ताकत पशुशक्ति के पास। कोई ताकत नहीं है पशुशक्ति के पास। पशुशक्ति की मृत्यु होगी।■

जीवन मृत्यु को दफना देगा!

भिलाई : चंद तथ्य[11]

भिलाई आंदोलन शुरू होने के बाद नियोगी ने 13 दिसंबर 1990 को दिल्ली में एक प्रेस सम्मेलन में भिलाई की परिस्थिति के बारे में एक विस्तृत नोट प्रसारित किया। इस नोट को हम यहां प्रस्तुत कर रहे हैं।

-स.

भिलाई स्टील प्लांट (बी.एस.पी.), जिसे सन् 1958 में सोवियत संघ की साझेदारी में शुरू किया गया था, ने इस आशा के साथ स्टील उत्पादन शुरू किया कि छत्तीसगढ़ के लोगों के विकास में मील का पत्थर साबित होगा। धीरे-धीरे सहायक उद्योग भी खुल गए। शुरूआत में 10 लाख टन के उत्पादन से प्रारंभ करके भिलाई स्टील प्लांट प्रति वर्ष 42 लाख टन के ऊपर स्टील का उत्पादन करने लगा है। भिलाई में 140 पंजीकृत औद्योगिक इकाईयां हैं, जिनमें से सिर्फ 105 ही काम कर रही हैं बाकी 35 कागजी बनी हुई हैं। ये भ्रष्टाचार के ही एक अन्य रूप का प्रतीक हैं।

छत्तीसगढ़ी लोगों की नज़र में भिलाई **विनाश** का प्रतीक है, न कि **विकास** का। वे इसे घृणा और हिकारत की नज़रों से देखते हैं। इसके दक्षिण में भिलाई से मात्र 100 कि. मी. की दूरी पर बस्तर जिले का अबूझमाड़ स्थित है, जहां के मारिया और मुरिया जनजातियों के हजारों लोग खूनी दस्त से मर रहे हैं। उत्तर में भिलाई से 85 कि. मी. की दूरी पर स्थित है मंडला जिला, जहां के बैगा आदिवासियों के साथ उनकी आदिम सभ्यता के चलते अजायबघर की वस्तु की तरह व्यवहार किया जाता है। भिलाई के पूर्व में 100 कि. मी. की दूरी पर रायपुर जिले के पिथौरा, बसना एवं सरायपाली स्थित हैं, जहां समाजकर्मी समूहों की पहलकदमी पर हाल ही में भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के हस्तक्षेप से 5,000 बंधुआ मजदूरों को मुक्त कराया गया। भिलाई से पश्चिम में महज 25 कि. मी. की दूरी पर राजनांदगांव जिला स्थित है, जो पानी के

---

[11]मूल पुस्तक से उद्धरित पृष्ठ संख्या : 208-212.

अभाव और अकाल के लिए मशहूर है, जबकि भिलाई स्टील प्लांट और उसके उपनगर में पानी की प्रचुरता है। इस प्रकार भिलाई स्टील प्लांट अपने गौरवमय विकास के 32 सालों के बाद भी इस इलाके के सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने में पूरी तरह नाकाम रहा है, जबकि इसका मूल मकसद यही था।

फिर भिलाई स्टील प्लांट से फायदा किसको है?

भिलाई के इर्द-गिर्द री-रोलिंग स्टील मिलें कुकुरमुत्तों की तरह उग आई हैं और वे भिलाई स्टील प्लांट में व्याप्त चोरी व भ्रष्टाचार के चलते फल-फूल रही हैं। **यह इसी पुरानी अवधारणा को बल प्रदान करता है कि भारत का सार्वजनिक क्षेत्र जनता की बलि चढ़ाकर निजी क्षेत्र के मुनाफे को बढ़ाने का नुस्खा मात्र है।**

यहां पांच प्रमुख उद्योगपति हैं, जो पिछले तीस सालों के भीतर अनुमानतः 1,000 करोड़ रुपये के मालिक बन गए हैं। इनमें से प्रमुख हैं : सिम्प्लेक्स ग्रुप का मालिक शाह घराना, बी.ई.सी. का मालिक जैन घराना, छत्तीसगढ़ डिस्टिलरीज़ का मालिक केड़िया घराना। भिलाई के ये नए टाटा-बिड़ला रातोंरात उभरे हैं। अगर ऐसा नहीं है तो फिर सिम्प्लेक्स ग्रुप के हीराभाई शाह द्वारा चीन के सहयोग से 1,000 करोड़ रुपये की लागत के साथ स्पंज आयरन फैक्टरी खोलने का मतलब क्या है? सबको मालूम है कि हीराभाई ने जब सन् 1968 में भिलाई में अपना औद्योगिक जीवन शुरू किया था, तब उनके पास सिर्फ एक ड्रिल और एक लेथ मशीन थी। अर्जुन सिंह मंत्रीमंडल के दौरान भिलाई में केड़िया परिवार आसवनी शराब घोटाला के चलते प्रख्यात हुआ। केड़िया परिवार की सालाना आमदनी 36 करोड़ रुपये है। भिलाई के इन घरानों द्वारा पैसा कमाने के तौर-तरीकों के बारे में किसी अटकलबाजी की ज़रूरत नहीं है।

इन उद्योगों में कार्यरत मजदूरों की दुर्दशा

सिम्प्लेक्स ग्रुप के पास तीन जिलों में इंजीनियरिंग और कास्टिंग की सात इकाइयां हैं। जिस गति से इन औद्योगिक इकाइयों का फैलाव हुआ

है उसे विकास-दर के सामान्य मानदंडों के आधार पर नहीं समझा जा सकता। ये औद्योगिक इकाइयां भारत भर में स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लि. (सेल) द्वारा संचालित स्टील प्लांटों - मसलन भिलाई, राउरकेला, विशाखापत्तनम, दुर्गापुर और बोकारो - की प्रमुख आपूर्तिकर्त्ता हैं। इसके अलावा, उनके उत्पाद जापान व सोवियत संघ को निर्यात किए जाते हैं।

इतने बड़े कारोबार के बावजूद सिम्प्लेक्स ग्रुप में सिर्फ **105 स्थायी मजदूर** काम करते हैं, जबकि उसके छत्तीसगढ़ स्थित कारखानों में कुल मिलाकर 2,000 मजदूर काम करते हैं। यानी कि बाकी के **1,895 मजदूर अस्थायी और ठेका मजदूर हैं**। मजदूरों को प्रबंधन की मर्जी पर रखा और निकाला जाता है। ठेकेदार ज्यादातर इलाके के 'गुंडे' हैं, जिनमें से प्रत्येक के मातहत चार या पांच मजदूर काम करते हैं। ठेका मजदूरों को रत्ती भर भी स्वतंत्रता नहीं है। ठेकेदार शोषण के खिलाफ आवाज उठाने वाले मजदूरों को 'ठीक' करने के लिए गुंडों का खुला इस्तेमाल करते हैं। ये तमाम उद्योग इसी रणनीति पर अमल करते हैं।

यकीनन, मजदूरी काफी कम है!

भिलाई स्टील प्लांट के कर्मचारियों के ज्यादा वेतन व मजदूरी के चलते भिलाई में लगभग तमाम ज़रूरी चीजों का दाम बहुत ज्यादा है। तुलनात्मक रूप से सहायक उद्योगों के मजदूरों की मजदूरी काफी कम है - महज 500 या 600 रुपये महीना। भिलाई में साधारण से मकान का किराया भी 300 रुपये महीना से कम नहीं है। लेकिन इन उद्योगों में लगे मजदूरों को सिर्फ 20 या 25 रुपये महीना मकान किराया भत्ता मिलता है। ऐसी हालत में यह कैसे संभव है कि ये मजदूर एक उम्दा ज़िंदगी जी सकें?

औद्योगिक दुर्घटनाओं की दर भी काफी ज्यादा है!

मजदूरों को स्थायी रूप से 'अस्थायी' बनाए रखने की नीति के तहत उन्हें नियमित रूप से एक कारखाने से दूसरे में भेजते रहने के कारण हर उद्योग मौत का फंदा बन गया है। अंग-भंग होने, आंखों के चले

जाने की घटनाएं आए दिन होती रहती हैं। सबसे प्रमुख बात यह है कि ठेका मजदूरी के नाम पर उन्हें कोई हर्जाना भी नहीं दिया जाता।

ट्रेड यूनियन बनाने का कोई अधिकार नहीं

छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा के (छमुमो) भिलाई में उदय के पहले तक इन औद्योगिक इकाइयों में कोई भी ट्रेड यूनियन नहीं थी। दल्ली राजहरा के 15,000 मजदूरों के बीच ट्रेड यूनियन गतिविधियों के साथ सामाजिक सुधार आंदोलन का तालमेल स्थापित करने के अपने अनुभवों के चलते इस साल की शुरूआत में भिलाई के मजदूरों के बीच छमुमो के प्रति काफी आकर्षण पैदा हुआ। लेकिन यहां के उद्योगपति सिर्फ अपनी 'पालतू ट्रेड यूनियनों' से ही परिचित थे। यह काफी अजीबोगरीब बात है कि छमुमो द्वारा भिलाई को अपना कार्यक्षेत्र बनाने से पहले इस महा-औद्योगिक नगरी के उद्योगपति खुद ही अपनी मन-मर्जी से ट्रेड यूनियन बनाते और तोड़ते थे।

सिम्प्लेक्स उद्योग समूह गर्व से कहता था कि उसकी इकाइयों में ट्रेड यूनियन की कोई ज़रूरत नहीं है। हाल ही में उन्होंने दावा किया है कि 'दिल्ली के पास सफदर हाशमी के टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए, फिर भिलाई में तो किसी महात्मा गांधी को भी खत्म करने में देर नहीं लगेगी।' अस्सी के दशक की शुरूआत में सीटू (सेंटर ऑफ इंडियन ट्रेड यूनियन्स - माकपा से सम्बद्ध मजदूर संगठन) ने सिम्प्लेक्स में ट्रेड यूनियन बनाने की कोशिश की थी, लेकिन जब उसके अगुआ कार्यकर्त्ता श्री पी.के. मोइत्रा को कारखाने के भीतर बम विस्फोट के एक मामले में झूठ-मूठ फंसा दिया गया तो उसे पीछे हटना पड़ा। सच्चाई यह थी कि प्रबंधन ने साजिश बतौर ऐसे हालात पैदा किए ताकि ट्रेड यूनियन आंदोलन को कुचला जा सके।

प्रगतिशील इंजीनियरिंग श्रमिक संघ

वर्षों तक चुपचाप बैठे रहने के बाद भिलाई के मजदूरों ने छमुमो के नेतृत्व में 'प्रगतिशील इंजीनियरिंग श्रमिक संघ' का निर्माण किया। अब ये

मजदूर अन्याय व दमन को बर्दाश्त करने को कतई तैयार नहीं थे। एक ही साथ भिलाई की 50 औद्योगिक इकाइयों के हजारों मजदूरों ने ट्रेड यूनियन का गठन किया। समय-समय पर अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने के लिए उनके द्वारा आयोजित जुलूसों व हड़तालों ने इन उद्योगपतियों के भीतर कंपकंपी पैदा कर दी। इस इलाके के पुलिस महानिरीक्षक को अपनी ओर मिलाकर इन उद्योगपतियों ने ट्रेड यूनियन नेताओं को 'अपराधी' घोषित करने और गुंडों को महिमामंडित करने का अभियान शुरू किया। इसकी आड़ में आज वे मजदूरों की संयुक्त ताकत के खिलाफ नये तरीकों से दमन चला रहे हैं। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं -

इस ट्रेड यूनियन के उपाध्यक्ष श्री रवींद्र शुक्ल और एक अन्य पदाधिकारी श्री जगदीश वर्मा पर लाठी व चाकू से हमला किया गया। पिछले एक महीने के दौरान यूनियन के अन्य चार सदस्यों पर भी घातक हमला किया गया। हिंसा के हाल के दौर में सायंकालीन अखबार 'भिलाई टाइम्स' के संपादक डॉ. देवी दास पर 11 दिसंबर को उद्योगपतियों के गुंडों ने लाठी व चाकू से हमला किया। उनका दोष यही था कि उन्होंने आर. के. इंडस्ट्रीज़ में लगी आग की धोखाधड़ी का, जिसमें इस यूनियन के 15 सदस्यों को पुलिस ने झूठ-मूठ फंसा दिया था, पर्दाफाश करने का साहस किया था।

इस यूनियन के निर्माण के बाद से इससे जुड़े 700 मजदूरों की छंटनी कर दी गई।[12] जिला प्रशासन द्वारा यूनियन की गतिविधियों पर गैर-कानूनी और मनमाने ढंग से प्रतिबंध लगाया जाना मजदूरों के जनतांत्रिक अधिकारों के हनन के नए मानदंड स्थापित कर रहा है। एक ओर जहां एटक (ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस - भाकपा से सम्बद्ध मजदूर संगठन) जैसी दूसरी यूनियनों को भिलाई स्टील प्लांट के गेट पर धरना देने की इजाजत दी गई, वहीं दूसरी ओर प्रगतिशील

---

[12] छमुमो द्वारा सहायक श्रम आयुक्त, रायपुर, को दी गई जानकारी के अनुसार यह संख्या दिसंबर 1991 तक बढ़कर 3,000 हो गई और जून 1992 तक 4,200 हो गई। -स.

इंजीनियरिंग श्रमिक संघ के मजदूरों को हड़ताल के आरोप में धारा 144 के तहत गिरफ्तार कर लिया गया। छमुमो और 14 अन्य सामाजिक समूहों को इस साल जिला प्रशासन ने कानून व व्यवस्था की समस्या के नाम पर गांधी जयंती समारोह आयोजित करने की इजाजत भी नहीं दी। फलस्वरूप छत्तीसगढ़ के करीब एक लाख मजदूर-किसानों को भिलाई के पूर्व में 40 कि. मी. दूर जाकर रायपुर में राष्ट्रपिता का जन्मदिन मनाना पड़ा।

सरकार की सांठगांठ

इन उद्योगपतियों के गुंडों के आतंक से पूरा इलाका त्रस्त है। लेकिन आज तक एक भी गुंडा पकड़ा नहीं गया, जबकि उन्होंने ट्रेड यूनियन के छह सदस्यों और एक पत्रकार पर कातिलाना हमले किए हैं। भारतीय जनता पार्टी की मध्य प्रदेश सरकार भिलाई के इन औद्योगिक घरानों के स्वार्थों की पूर्ति का साधन बनी हुई है, क्योंकि चुनाव के लिए पैसा वे ही देते हैं। मौजूदा सरकार के गुर्गे और उद्योगपति रोजाना एन. आर. घोषाल, जनकलाल ठाकुर और शंकर गुहा नियोगी जैसे ट्रेड यूनियन नेताओं के खिलाफ कठोर कार्रवाई की मांग कर रहे हैं। इन राजनीतिक दलालों की ढिठाई का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि उन्होंने खुलेआम इन नेताओं को राष्ट्रीय सुरक्षा कानून (रासुका) के तहत गिरफ्तार करने की मांग की है। उनकी गिरफ्तारी के लिए अनुकूल माहौल तैयार करने के लिए भाजपा सरकार ने दुर्ग जिले के तीन नागरिकों और रायपुर जिले के दो नागरिकों को पिछले पखवाड़े रासुका के तहत गिरफ्तार कर लिया। 'पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज़' (पीयूसीएल) ने इस कार्रवाई की तीव्र भर्त्सना की है।

सहायक श्रम आयुक्त (राज्य) ने समझौते के लिए अब तक पांच मीटिंगें बुलाई हैं। लेकिन, इन उद्योगपतियों ने देश के तमाम जनतांत्रिक कायदे-कानूनों को नज़रअंदाज करते हुए इस वैधानिक संस्था के हस्तक्षेप को स्वीकार करने से इंकार कर दिया।

फिर भी मजदूर डटे हुए हैं

इतने आतंक व यातना के बावजूद इस औद्योगिक शहर के मजदूर डटे हुए हैं और अपनी मर्यादा और जनतांत्रिक अधिकारों को बहाल करने की लड़ाई में आगे बढ़ रहे हैं। देश भर के प्रगतिशील संगठनों द्वारा समर्थन में की गई कार्रवाईयों ने भिलाई के मजदूरों को मौत और विनाश की ताकतों के खिलाफ लड़ाई जारी रखने के लिए प्रोत्साहित किया है।

फिर भी, यह बुनियादी सवाल अब भी बरकरार है कि पिछड़े छत्तीसगढ के विकास में भिलाई स्टील प्लांट की भूमिका और जगह क्या है? **क्या यह आंतरिक उपनिवेशवाद का प्रतीक नहीं है, जिसमें किसी इलाके के लोगों की दुर्दशा पर ध्यान दिए बगैर वहां के प्राकृतिक संसाधनों का दोहन किया जाता है?**

भिलाई स्टील प्लांट ने लोगों को रोजगार उपलब्ध कराने के अपने घोषित वायदों को आज तक पूरा नहीं किया है। उल्टे 'मशीनीकरण' और 'आटोमेशन' (स्वचालित प्रणाली पर आधारित उत्पादन प्रक्रिया) के नाम पर रोजगार की संभावनाएं सुनियोजित ढंग से खत्म की जा रही हैं। भिलाई स्टील प्लांट में फिलहाल 72,000 मजदूर काम करते हैं, जिनमें ठेकेदारी मजदूर भी शामिल हैं, जबकि सन् 1986 में यहां 96,000 मजदूर काम करते थे। इस प्रकार देश के 24,000 लोगों को सार्वजनिक क्षेत्र के इस सबसे बड़े प्रतिष्ठान ने मात्र पांच साल के अंदर बेरोजगार कर दिया। सामाजिक-आर्थिक न्याय और जनोन्मुखी विकास के हिमायती लोगों के लिए सचमुच काफी चिंता का विषय है।■
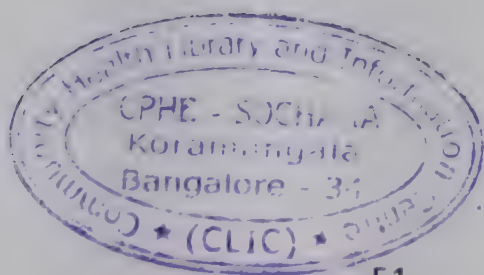
मजदूरी, काम एवं रहन-सहन की परिस्थितियां[13]

नवंबर 1983 में हिंद मजदूर सभा द्वारा स्थापित एशियन वर्कर्स डेवलपमेंट इंस्टीट्यूट, राउरकेला, की ओर से एक परिचर्चा का आयोजन किया गया था। इस परिचर्चा का विषय 'खदान मजदूरों की मजदूरी, कार्यदशाएं एवं रहन-सहन की परिस्थितियां' था। इस परिचर्चा के लिए नियोगी ने विशेष रूप से अंग्रेजी में एक सैद्धांतिक पर्चा तैयार किया था। परंतु ऐन मौके पर उनकी गाड़ी छूट गई और यह पर्चा कभी भी प्रस्तुत नहीं हो सका। इस पुस्तक की तैयारी के दौरान इस पर्चे की एक प्रति अनायास मिल गई।. . . यहां इस पर्चे का ध्रुव नारायण द्वारा हिंदी में किया गया परिमार्जित स्वरूप प्रस्तुत है।

-स.

मजदूरी की अवधारणा पूंजीवादी समाज व्यवस्था की एक केंद्रीय अवधारणा है। इस व्यवस्था के तहत मजदूरी, उत्पाद के मूल्य का वह हिस्सा है जिसे उत्पादन में लगे मजदूर को उसकी श्रम शक्ति का पुनर्निमाण करने व उसको बरकरार रखने के लिए दिया जाता है। मजदूरी किसी भी तरह से मजदूर द्वारा संपन्न कार्य का कुल मूल्य नहीं होती। पूंजीवादी व्यवस्था के तहत मजदूरी का निर्धारण विभिन्न कारकों के ताने-बाने पर निर्भर करता है। उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं -

> श्रम की आपूर्ति व मांग के बीच का समीकरण; उत्पाद की आपूर्ति व मांग के बीच का समीकरण, जो आज बढ़ते क्रम में अंतर्राष्ट्रीय बाजार पर निर्भर बनता जा रहा है; और इसके साथ ही मजदूर वर्ग की संगठित ताकत।

यदि इस सैद्धांतिक रचना की सीमाओं को स्वीकार भी लिया जाए, तो भी हमें मजदूरी की अवधारणा के संबंध में राज्य के मौजूदा कानूनों के तहत काफी उलझन दिखाई देती है।

उदाहरण के लिए, यदि मौजूदा तीनों कानूनों (अर्थात मजदूरी भुगतान कानून, न्यूनतम मजदूरी कानून और बोनस भुगतान कानून) की तुलना करें तो हमें मजदूरी की तीन अलग-अलग परिभाषाएं मिलेंगी। बहरहाल,

---

[13] मूल पुस्तक से उद्धरित पृष्ठ संख्या : 155-161

उन सबमें एक सामान्य बिंदु भी है। वह यह है कि मजदूरी न सिर्फ नियोजक (मालिक) व कर्मचारी के बीच हुए 'घोषित' अनुबंध पर निर्भर है, बल्कि उनके बीच के 'अंतर्निहित' अनुबंध पर भी निर्भर करती है। फिर मजदूरी में वह राशि भी शामिल है जिसे नियोजक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तरीके से मजदूरों को देता है। हम इन बिंदुओं पर आगे विस्तार से चर्चा करेंगे।

अंतर्निहित अनुबंध

यदि कोई नियोजक किसी काम को कराना चाहता है तो वह किस प्रकार के अंतर्निहित अनुबंध करता है? मसलन, किसी बनिये द्वारा दुकान में मदद के लिए एक मददगार रखने या धान की फसल की कटाई के लिए किसान द्वारा मजदूर लगाने या एक गैरेज उस्ताद द्वारा किसी हेल्पर को नट-बोल्ट कसने हेतु रखने, जैसे मामलों में यह एक साधारण सवाल लग सकता है। लेकिन जब हम भिलाई अथवा राउरकेला इस्पात कारखानों जैसे राज्य-नियंत्रित सार्वजनिक प्रतिष्ठानों के परिप्रेक्ष्य में इस सवाल पर गौर करते हैं तब यह सवाल जटिल हो जाता है।

भिलाई स्टील प्लांट की स्थापना के पहले दुर्ग जिले का एक हिस्सा जंगल, तो दूसरा हिस्सा खेती की जमीन था। भिलाई इस्पात कारखाने ने जंगल व खेती की जमीन के एक बड़े भू-भाग पर कब्जा जमा लिया है। उसने खेतिहरों और आदिवासियों को बड़ी संख्या में जमीन, पानी व जंगल पर सदियों से स्थापित उनके पुश्तैनी अधिकारों से उन्हें बेदखल कर दिया है। इसके अलावा, उसने हजारों मजदूरों का बाहर से आयात किया। उनमें से कुछ को तथाकथित 'घोषित' करारनामों के तहत सीधे रोजगार दिया गया; वे ही नियमित मजदूर हैं। लेकिन उनकी बहुत बड़ी तादाद को ठेकेदारी प्रथा के तहत काम दिया गया (खदान, स्लैग डम्प, लघु उद्योग इत्यादि में)। भिलाई स्टील प्लांट और इन मजदूरों के बीच एक 'अंतर्निहित' समझौता है, यह सच्चाई केवल उस वक्त स्वीकार की गई जब ये मजदूर संगठित होने लगे और इसकी स्वीकृति के लिए लड़ने लगे। जहां ऐसी लड़ाइयां नहीं हुईं, वहां इसे मान्यता भी नहीं

मिली। यह बात साफ-साफ समझ में तब आती है, जब छत्तीसगढ़ माईन्स श्रमिक संघ (सी.एम.एस.एस.) से जुड़े मजदूरों की छह साल पहले की ज़िंदगी की तुलना उनके आज के जीवन स्तर से की जाए या दल्ली राजहरा की लौह अयस्क खदानों में काम करने वाले मजदूरों के जीवन स्तर की तुलना भिलाई स्टील प्लांट के स्लैग डम्प में काम करने वाले मजदूरों से की जाए या फिर दल्ली राजहरा के खदान मजदूरों और राउरकेला इस्पात कारखाने की बाराद्वार खदानों के मजदूरों के जीवन स्तरों की तुलना की जाए।

तीसरे प्रकार के मजदूर भी हैं, जिनके मामले में भिलाई स्टील प्लांट किसी भी प्रकार के 'अंतर्निहित' अनुबंध की बात स्वीकार नहीं करता, यद्यपि उनका काम उसके संचालन के लिए निहायत ज़रूरी है। इनमें वैसे मजदूरों की विशाल फौज शामिल है जिनका काम सीधे भिलाई स्टील प्लांट के नियमित मजदूरों की श्रम शक्ति को बरकरार रखने और उसके पुनर्निर्माण को सुनिश्चित करने के लिए ज़रूरी है। इनमें स्थानीय किसान एवं मोची, नाई या गैरेज मिस्त्री जैसे छोटे कारीगर और घरेलू महिलाओं का समूह शामिल है। इन सब में घरेलू महिलाओं का काम सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है, लेकिन वे ही पूर्णतः उपेक्षित भी हैं। इन सबके प्रति भी कोई नैतिक जिम्मेदारी है, इस बात के सबूत 'विशेष क्षेत्र विकास कानून' और गांवों को गोद लिए जाने जैसे कदमों से मिलते हैं। हालांकि, इन्हें ऐसे पेश किया जाता है मानो वह प्रतिष्ठान पूरे समुदाय के ऊपर कोई अहसान कर रहा हो। इन दायित्वों की अनुबंधात्मक प्रकृति भी संगठन व संघर्ष की प्रक्रिया के द्वारा ही उजागर होती है।

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष मजदूरी

मजदूरी की मौजूदा कानूनी परिभाषाओं के अध्ययन से एक दूसरी अवधारणा सामने आती है। वह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष मजदूरी की अवधारणा से संबंधित है। यदि आज हम भिलाई स्टील प्लांट के 'नियमित' मजदूर के जीवन स्तर की तुलना 'ठेका' मजदूर या असंगठित मजदूर के जीवन स्तर से करते हैं तो हमें दोनों के बीच बहुत बड़े अंतर दिखाई देते हैं। ये अंतर सिर्फ 'प्रत्यक्ष मजदूरी' यानी वेतन के बीच फर्क

की वजह से नहीं हैं। भिलाई स्टील प्लांट का 'नियमित' मजदूर वेतन की बनिस्बत 'अप्रत्यक्ष मजदूरी' के ज़रिए कहीं ज्यादा कमाता है। इनमें शामिल हैं - स्वास्थ्य सुविधा, शिक्षा, आवास, सड़कें, को-आपरेटिव सोसायटियां, वाहन भत्ता, पर्यटन के लिए आर्थिक सहायता, अर्जित अवकाश, अंशदायी भविष्य निधि, पेंशन, आदि-आदि। सवाल यह है कि भिलाई स्टील प्लांट अपने 'नियमित मजदूरों' को ये सुविधाएं देने की ज़रूरत क्यों महसूस करता है? इनमें से ज्यादातर सुविधाओं की गारंटी तो भारतीय संविधान के नीति-निर्देशक तत्वों के तहत सभी नागरिकों के लिए दी ही गई हैं। वास्तव में, ब्रिटेन जैसे उदार पूंजीवादी देशों में भी ये तमाम सुविधाएं सभी नागरिकों को उपलब्ध हैं। असल में भिलाई स्टील प्लांट जानता है कि भारत में ये सुविधाएं नागरिकों को मात्र कागज पर ही दी जाती हैं। इसीलिए भिलाई स्टील प्लांट को सामान्य जीवन के लिए ज़रूरी इन बुनियादी सुविधाओं को अपने मजदूरों को उपलब्ध कराने के लिए विशेष प्रावधान करने की ज़रूरत पड़ती है।

हमारी मान्यता है कि इन सुविधाओं के प्रावधानों को मजदूरी की अवधारणा में शामिल किया जाना चाहिए। ऐसा न सिर्फ नियमित मजदूरों के साथ किए गए 'घोषित' अनुबंधों के तहत होना चाहिए, बल्कि इन्हें उन 'अंतर्निहित' अनुबंधों में भी शामिल किया जाना चाहिए, जिनकी चर्चा हमने ऊपर की है। बहरहाल, इसकी 'स्वीकृति' के लिए भी संघर्ष करना होगा। ऐसे संघर्ष के लिए इन मुद्दों को जनसमुदाय तक ले जाना होगा और उन्हें बताना पड़ेगा कि कैसे उनके साथ धोखा-धड़ी की जा रही है।

न्यूनतम मजदूरी : क्यों और कैसे?

हमारी यह समझ है कि मौजूदा भारतीय सामाजिक व्यवस्था के तहत **'प्रत्येक के द्वारा उसकी क्षमता के अनुसार और प्रत्येक को उसकी ज़रूरत के अनुसार'** का नारा उठाना कल्पनावादी बात होगी। हम मानते हैं कि आज हमें अपने आपको, **'प्रत्येक को उसके काम के अनुसार'** के नारे तक सीमित करना होगा। फिर भी किसको कितना दिया जाए, इसके लिए ज़रूरतों पर नज़र दौड़ानी पड़ेगी। न्यूनतम मजदूरी कानून लागू करके राज्य ने भी इस दायित्व को स्वीकार किया है। इस कानून

का निर्माण यह दिखलाता है कि मजदूरी के निर्धारण के सवाल को सिर्फ श्रम बाजार के समीकरणों पर नहीं छोड़ा जा सकता, बल्कि राज्य को प्रत्यक्षतः हस्तक्षेप करना पड़ेगा ताकि एक न्यूनतम जीवन स्तर सुनिश्चित किया जा सके।

फिर भी भारत में तमाम अन्य सुधारात्मक उपायों की तरह यह भी महज कागजी बना हुआ है। न्यूनतम मजदूरी की ज़रूरत को स्वीकार करने के बाद राज्य खुद ही इस स्वीकृति को विभिन्न तरीकों से निरर्थक बनाने की कोशिश करता है। इस क्रम में वह ऐसी औद्योगिक व कृषि नीतियां तय करता है, जिनके परिणामस्वरूप बेरोजगारी बढ़ती है; मसलन, मशीनीकरण की नीति। ऐसा ही एक दूसरा उपाय है, न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण के लिए ऐसे मानक तय किया जाना जिनका मौजूदा सामाजिक व आर्थिक असलियत से कोई रिश्ता नहीं होता। महाराष्ट्र में न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण जिस प्रकार से होता है उसके एक दिलचस्प विश्लेषण से यह बात साफ हो जाती है।

महाराष्ट्र में न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण 'पेज कमेटी' की सिफारिशों के आधार पर किया जाता है। इस कमेटी के अनुसार, ''न्यूनतम मजदूरी को निर्वाह-व्यय (कॉस्ट ऑफ लिविंग) से किसी-न-किसी रूप में जुड़ा होना चाहिए। मजदूरों को इतना मिलना चाहिए कि वे भोजन, आवास, कपड़ा, दवा-दारू और शिक्षा जैसी न्यूनतम ज़रूरतों को पूरा करने में सक्षम हों।'' इतनी बात तो उचित ही जान पड़ती है। लेकिन पेज महाशय निर्वाह-व्यय के आकलन के लिए भोजन में मुख्य खाद्य पदार्थ की कीमत के आधार पर एक फार्मूले को ईज़ाद करते हैं। मुख्य खाद्य पदार्थ (इस मामले में ज्वार) की कीमत का आकलन ज़रूरी कैलोरी की एक निश्चित मात्रा के आधार पर किया गया है, जो भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् (आई.सी.एम.आर.) द्वारा निर्धारित न्यूनतम कैलोरी की मात्रा का एक अंश मात्र है। यदि हम आई.सी.एम.आर. की सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए स्वयं पेज महाशय द्वारा विकसित मानकों के आधार पर न्यूनतम मजदूरी तय करें, तब भी वह रोजाना रु. 12.10 बनती है, जबकि पेज महाशय के अनुसार उसे रु. 4.00 रोजाना होना चाहिए (निःसंदेह ये आंकड़े अब पुराने पड़ चुके हैं)।

मजदूरी : एक वैकल्पिक परिभाषा

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि न तो 'घोषित' और 'अंतर्निहित' अनुबंधों के मसले को और न ही 'प्रत्यक्ष' और 'अप्रत्यक्ष' मजदूरी के मसले को, और यहां तक कि, न ही न्यूनतम मजदूरी के प्रश्न को, अपरिवर्तनशील अवधारणाएं माना जा सकता है। ये तमाम अवधारणाएं परिवर्तनशील हैं। एक ओर तो मजदूरों के संगठन व जुझारूपन के दबाव में, और दूसरी ओर, राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय पूंजीवाद की पाशविक शक्ति के प्रभाव में, इनमें लगातार बदलाव होता रहता है। इस कारण **मजदूर वर्ग 'मजदूरी' की ऐसी कोई स्थिर परिभाषा नहीं दे सकता, जो संघर्षों की प्रक्रिया से विमुख हो।'** पूंजीवाद के खिलाफ आर्थिक पक्ष की लड़ाई में मजदूरों का मौजूदा नारा होना चाहिए - 'एकताबद्ध (एकजुट) होकर अपनी न्यायोचित मांगों के लिए संघर्ष करो।'

काम की परिस्थितियां

कहा जा सकता है कि काम की परिस्थितियों का अर्थ है वे भौतिक परिस्थितियां जिनके तहत मजदूर काम करता है। इस भौतिक परिस्थिति के दो पहलू हैं, मसलन -

1. **काम के भौतिक हालात** - इसके तहत हम काम में प्रयुक्त तकनीक, सुरक्षा उपायों और मजदूरों के स्वास्थ्य और मनोवैज्ञानिक हालात पर कार्य-स्थल के पर्यावरणीय प्रभावों को शामिल कर सकते हैं।

2. **काम का सामाजिक स्वरूप** - यह भौतिक परिस्थितियों का अनुपूरक है और आम तौर पर उन्हें निर्धारित करता है। रोजगार की शर्तों, अनुबंध और श्रम का बंटवारा (मसलन - गैंग, जोड़ा या अकेला; प्रत्यक्ष नियोजक उप-ठेकेदार है या सार्वजनिक प्रतिष्ठान), इन सबका काम के सामाजिक स्वरूप पर प्रभाव पड़ता है।

किसी प्रतिष्ठान की उत्पादकता (यानी प्रति घंटे प्रति व्यक्ति उत्पादन) अंततोगत्वा काम की भौतिक व सामाजिक परिस्थितियों के ऊपर निर्भर करती है।

हमारे अपने अनुभवों से यही साबित होता है कि इस समस्या के कई पहलू हैं। उनमें से कुछ पर विस्तार से चर्चा करने की ज़रूरत है।

सबसे पहले हम इस सवाल पर गौर करेंगे कि मजदूर और मजदूर संगठन काम की परिस्थितियों को किस हद तक नियंत्रित कर सकते हैं। यह किसी स्थान व काल विशेष में सीधे मजदूर आंदोलन के जुझारूपन पर निर्भर करता है। प्रबंधन में मजदूरों द्वारा नियंत्रण की अवधारणा, प्रबंधन में मजदूरों की भागीदारी की उस अवधारणा से काफी अलग है, जिसकी चर्चा सार्वजनिक प्रतिष्ठानों के प्रचार साहित्य में अक्सर होती है। एक तरफ मजदूर अपनी संगठित ताकत के आधार पर मांगें रखते हैं और दूसरी तरफ प्रबंधन अपने जी-हुजूरिए ट्रेड यूनियनों के गुर्गों को लेकर 'वर्क्स कमेटी' के निर्माण के ज़रिए इन संघर्षों की धार को कुंद करने की कोशिश करता है। सुरक्षा उपायों की पर्याप्तता और उत्पादन के मामलों में प्रबंधन को उसकी जिम्मेदारी से छुटकारा दिलाने में वर्क्स कमेटियों की भूमिका को प्रकाश में लाया जाना चाहिए।

एक दूसरा महत्वपूर्ण बिंदु, जिस पर यहां जोर देने की ज़रूरत है, वह यह है कि उत्पादन-कार्य की कुछ पद्धतियां विशेष रूप से जोखिम की संभावनाओं से भरी रहती हैं। मसलन, दल्ली राजहरा की खदानों से लौह अयस्क को रेल तक ले जाने का काम ट्रकों द्वारा किया जाता है और माल की ढुलाई के काम में लगे मजदूरों को 'खेप' की प्रति दिन संख्या के अनुसार मजदूरी दी जाती है। इस स्थिति में ट्रक चालकों व मजदूरों के ऊपर काफी दबाव रहता है कि वे ज्यादा-से-ज्यादा खेप लगाएं ताकि ज्यादा कमा सकें। इस क्रम में वे सुरक्षा कानूनों का उल्लंघन करते हैं, खतरनाक तरीके से ट्रक चलाते हैं, भीड़-भाड़ के वक्त अयस्क को सड़क के किनारे ही लापरवाही से पटक देते हैं। इससे जाहिर है कि मजदूरों और आम लोगों के लिए काफी खतरा बना रहता है। इस अनुभव से यही सीखा जा सकता है कि 'पीस रेटेड' काम[14] के मामले में भी अधिकतम काम के परिमाण की कोई सीमा होनी चाहिए।

---

[14]वह पद्धति जिसमें मजदूरी का भुगतान उत्पादन के परिमाण के अनुसार किया जाता है।

'पीस रेटेड' काम के मानकों को तय करने के क्रम में सामाजिक परिस्थिति के सभी पहलुओं पर समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए।

ज्यादातर सार्वजनिक प्रतिष्ठानों मे कार्यस्थल के वर्तमान संयोजन के चलते मजदूर काम की प्रक्रिया से बहुत ज्यादा अलगाव महसूस करते हैं। मजदूरों में काम के प्रति जुड़ाव का अभाव, प्रबंधन द्वारा मजदूरों के साथ ऐसा बर्ताव मानो वे बस काम करने वाली मशीन भर हों - इन सबका औद्योगिक वातावरण पर काफी बुरा प्रभाव पड़ता है। मजदूर काम के घंटों के दौरान अपने आपको कैदी महसूस करते हैं और पाली की समाप्ति के बाद आजाद। इस मुक्ति को अभिव्यक्त करने का कोई रचनात्मक जरिया न होने की वजह से वे अक्सर शराब की ओर मुड़ जाते हैं और 'शुभचिंतक' राज्य की ओर से शराब की खुलेआम बिक्री की पूरी व्यवस्था की जाती है।

जहरीले रसायनों के इस्तेमाल और खतरनाक उत्पादन प्रक्रिया के चलते और वायु व ध्वनि प्रदूषण से स्वास्थ्य के लिए पैदा होनेवाले खतरे और भी स्पष्ट हैं। हमें निश्चित तौर पर इन प्रत्यक्ष खतरों के खिलाफ लड़ना चाहिए, लेकिन स्वस्थ कार्य-परिस्थितियों के लिए हमारी लड़ाई को बृहत्तर परिप्रेक्ष्य में रखकर देखने की ज़रूरत है। इस परिप्रेक्ष्य का केंद्रीय सवाल है - **उत्पादन प्रक्रिया में सफलता व आनंद की भावना के साथ श्रमिकों की भागीदारी।** इससे न सिर्फ औद्योगिक क्षेत्र का सामाजिक परिवेश, बल्कि उत्पादकता भी प्रभावित होती है। नियमित मजदूरों के लिए प्रोत्साहन बोनस और पीस रेटेड काम जैसी योजनाओं की घोषणा के ज़रिए प्रबंधन भी इसे अपनी अनकही स्वीकृति देता है।

उत्पादन के मौजूदा सामाजिक स्वरूप के तहत कतिपय संरचनात्मक कारक काम की शोषणकारी परिस्थितियों को स्थापित प्रणालियों का रूप प्रदान करते हैं। मौजूदा व्यवस्था में अंतर्निहित ये प्रणालीगत कारक काम की परिस्थितियों के ऊपर मजदूरों व उनके संगठनों की नियंत्रण क्षमता को निष्प्रभावी बना देते हैं। उदाहरणार्थ, 'माईन्स सुरक्षा के महानिदेशक' (डी.जी.एम.एस.) के नियमों के अनुसार खदानों में बेंच की निर्धारित

ऊंचाई 6 मीटर होनी चाहिए। लेकिन राउरकेला इस्पात कारखाने की बाराद्वार डोलोमाइट खदान के मजदूरों को 15 मीटर की या उससे भी अधिक बेंच ऊंचाई पर काम करना पड़ता है। इसके अलावा उनकी सेवा शर्तें ऐसी हैं कि विरोध करने पर नौकरी छूटने का खतरा खड़ा हो जाता है। शिकायत करने पर राजसत्ता मजदूरों के लिए बिना कोई वैकल्पिक रोजगार की व्यवस्था किए ऐसी असुरक्षित खदानों को बंद कर देती है। दिल्ली की पत्थर खदानों के असंगठित मजदूरों के साथ ऐसा ही हुआ। मजबूरन उन्हें फिर से गैर-कानूनी रूप से उन्हीं खदानों में कहीं ज्यादा खतरनाक परिस्थितियों में जान को जोखिम में डालते हुए काम करना पड़ रहा है।

इसके अलावा मजदूरों की सुरक्षा व काम की परिस्थितियों के बारे में मौजूदा उपाय आम तौर पर पूर्णतः अपर्याप्त होते हैं। मसलन, कार्यस्थल पर प्रति मजदूर पानी की निर्धारित मात्रा को दो लीटर तय किया गया है, जो पीने के लिए भी नाकाफी है, नहाने-धाने की तो बात ही छोड़ दें। इसी प्रकार असंगठित खदानों में सुरक्षित ड्रिलिंग और ब्लास्टिंग की अक्सर कोई व्यवस्था नहीं होती। अगर ज़रूरी होता है तो काम को पूरा करने के लिए पहले पत्थरों को गर्म किया जाता है और फिर उन्हें ठंडा किया जाता है या सब्बल की मदद से छेद बनाकर उसमें बारूद भर कर ब्लास्टिंग की जाती है। इसे प्रायः अप्रशिक्षित लोगों द्वारा कराया जाता है।

ऐसी परिस्थितियां 'सेल' (भारतीय इस्पात प्राधिकरण) की अपनी बंधक खदानों में भी मौजूद हैं। फिर असंगठित क्षेत्र की खदानों के हालात का केवल अंदाजा ही लगाया जा सकता है।

रहन-सहन की परिस्थितियां

काम व रहन-सहन की परिस्थितियों का विभाजन अपने-आप में ही कृत्रिम है, क्योंकि मजदूर की ज़िंदगी एक होती है, वह दो भागों में विभाजित नहीं होती। फिलहाल इस विभाजन को यदि मान भी लिया

जाए, तो हमें रहन-सहन की परिस्थितियों के सिलसिले में भी वैसे ही प्रणालीगत कारक निरंतर काम करते दिखते हैं।

मजदूरों की विभिन्न श्रेणियों के बीच पानी, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता के मामले में मौजूद भारी विषमताओं के अलावा एक अन्य पहलू है जिसे प्रायः नज़रअंदाज कर दिया जाता है - मजदूर के सांस्कृतिक जीवन पर लगातार हमला हो रहा है। न सिर्फ परंपरागत सांस्कृतिक स्वरूपों व संस्थाओं को मिटाया जा रहा है, वरन् उनकी जगह आधुनिक जीवन के नए सांस्कृतिक स्वरूपों को भी स्थापित नहीं किया जा रहा है। इस माहौल में सिर्फ एक घिसी-पिटी व विकृत संस्कृति ही टिक और पनप सकती है, जैसा कि किसी भी औद्योगिक नगर में लगे पोस्टरों व होर्डिंगों में देखा जा सकता है।

भयावह मुद्रास्फीति के चलते असल मजदूरी व जीवन स्तर में लगातार गिरावट आ रही है। इसे निम्नलिखित तालिका की मदद से समझा जा सकता है -

क	**निर्वाह-व्यय सूचकांक**[15] (1961=100)		
	सन् 1981		
	औद्योगिक मजदूर	-	541
	शारारिक श्रम न करनेवाले शहरी कार्मिक	-	479
	खेतिहर मजदूर	-	521
ख	**थोक-भाव सूचकांक**[16] (1970-71=100)		
	खाद्य सामग्री	-	417
	अन्य सामग्रियां	-	298

इसमें सबसे बुरी तरह प्रभावित होने वाली श्रेणी अनियमित मजदूरों की है। **इनके पसीने व मेहनत के बल पर नियमित मजदूरों का भरण-पोषण होता है।**

15. 'कॉस्ट ऑफ लिविंग इन्डेक्स'।

16. 'होलसेल प्राइज़ इन्डेक्स'।

निष्कर्ष

हमारा निष्कर्ष है कि मजदूरों की मजदूरी, काम व रहन-सहन की परिस्थितियों को तीन अलग-अलग असम्बद्ध खानों में नहीं बांटा जा सकता। वे एक-दूसरे से स्वाभाविक रूप से अंतर्संबंधित हैं। मजदूरों का जीवन इन तीनों के बीच जीवंत आदान-प्रदान के ऊपर निर्भर है। यह राजसत्ता और राजकीय मशीनरी व इज़ारेदार पूंजीवादी ताकतें ही हैं जो इन तीनों को अलग-अलग करके इन पर सौदा करती हैं। वे मजदूर वर्ग की हर श्रेणी के लिए मजदूरी, काम व रहन-सहन की परिस्थितियों के अलग-अलग मानदंड तय करती हैं। वे सदा एक की कीमत पर दूसरे के साथ मोल-तोल करती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ निर्णायक कार्यक्षेत्रों या उन क्षेत्रों में, जहां जुझारू आंदोलन हुए हैं, मजदूरों का जीवन स्तर कमोबेश स्थिर हो गया है। **यह स्थायित्व उसी इलाके के असंगठित मजदूरों व किसानों की कीमत पर हासिल किया गया है।**...■

(आगे की पांडुलिपि उपलब्ध नहीं हो सकी।)

'संघर्ष और निर्माण'

''समाज व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए और अधिकार प्राप्त करने के लिए संघर्ष तथा छोटे-छोटे निर्माण, जो कि नये समाज के गठन के लिए एक नयी चेतना पैदा कर सकें, इसको लेकर हम प्रयोग कर रहे हैं। लेकिन यह याद रखना होगा कि शोषण पर आधारित जन-विरोधी व्यवस्था को बदलने के लक्ष्य को लेकर हम संघर्ष व निर्माण की राजनीति की बात करते हैं।''

\- शंकर गुहा नियोगी

(मूल पुस्तक से उद्धरित पृष्ठ संख्या 321-322)

भारत में मजदूर संगठन और औद्योगिक रिश्ते[17]

वाल्टर फर्नांडिस (इंडियन सोशल इंस्टीट्यूट, नई दिल्ली) द्वारा सन् 1983 में विभिन्न गैर-दलीय ट्रेड यूनियन नेताओं के साक्षात्कार लिए गए। इसमें छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा की ओर से नियोगी शामिल हुए, यहां साक्षात्कार के दौरान नियोगी द्वारा दिए गए जवाबों को उद्धरित किया जा रहा है।

- स.

सवाल - आपकी नज़र में आज ट्रेड यूनियन आंदोलन के सामने कौनसी प्रमुख समस्याएं हैं?

नियोगीजी - मुख्य समस्याएं आर्थिक मुद्दों के आसपास केंद्रित हैं। असंगठित क्षेत्र की ट्रेड यूनियनों के लोग बहुत ही असुरक्षित जीवन जी रहे हैं। अगर वे इंटक (इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस - कांग्रेस-इ पार्टी से सम्बद्ध मजदूर संगठन) के सदस्य नहीं हैं, तो अपनी नौकरी से हाथ धो बैठते हैं। यह असुरक्षा उन्हें मौजूदा व्यवस्था को स्वीकार करने को मजबूर करती है। संगठित क्षेत्र में मैनेजमेंट द्वारा जो 'अग्रिम' दिया जाता है वह एक बड़ी समस्या है। त्यौहार, स्कूटर, मकान और अन्य अग्रिम वे ऋण हैं जिनको मजदूर के मासिक वेतन में से काटा जाता है। हर महीने वेतन में से होनेवाली इस कटौती के चलते मजदूर के हाथ में, उसकी दैनिक ज़रूरत की तुलना में काफी कम पैसा लग पाता है। इस तरह वह उधारी या और पैसे मांगते रहने के चक्कर में पड़ जाता है और उसका जीवन स्तर गिरता जाता है। यह अग्रिम लेना ही मजदूरों के लिए प्राथमिकता बन गई है और यही अर्थवाद का सबसे घिनौना रूप है। इस अर्थवाद से यह भी स्पष्ट होता है कि किस तरह मजदूरों की भावनाओं के साथ खिलवाड़ करके सांप्रदायिक दल उन्हें अपनी गिरफ़्त में ले लेते हैं और साथ-साथ वे उन्हें अधिक आर्थिक लाभ दिलाने का आश्वासन भी देते रहते हैं। इस प्रकार के अर्थवाद के फलस्वरूप मजदूर अपना जुझारूपन खो बैठते हैं।

---

[17]मूल पुस्तक से उद्धरित पृष्ठ संख्या : 314-318.

सवाल - भारत के श्रम कानूनों में हाल किए गए परिवर्तनों को आप किस नज़र से देखते हैं?

नियोगीजी - हमारी अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों का असमान विकास ही आज हमारी अर्थनीति का केंद्रीय सवाल है। बहुत सारी समस्याएं हैं जिनसे निपटना ज़रूरी है। उदाहरण के लिए, न्यूनतम मजदूरी का सवाल है। प्रत्येक उद्योग तथा हर इलाके की अलग परिस्थिति के अनुसार मजदूरी तय किए जाने पर चर्चा चल रही है। ठेका मजदूरी अधिनियम का खंड 10 है, जिसमें संशोधन की ज़रूरत है। इस संशोधन की ज़रूरत के बारे में संबंधित मंत्रियों को राजी कर लेने के बावजूद मजदूरों के पक्ष में कानून नहीं बनाए जाते। जो सुधार किए जाते हैं वे भी बहुत-सी सीमाओं से बंधे होते हैं। उदाहरण के लिए, जब सरकार न्यूनतम मजदूरी की दर बढ़ाती है, तो वह इस पैसे को वापिस लेने के तरीकों को भी बढ़ावा देती है। उदाहरण के लिए, बिहार में शराब की 1,500 नई दुकानें मुख्यतः धनबाद कोयला खदान क्षेत्र में खोली गई हैं।

इसके अलावा, कानून में बहुत सी खामियां होती हैं, जो मैनेजमेंट की तरफ़दारी करती हैं। उदाहरण के लिए, किसी श्रम कानून का उल्लंघन करने पर मैनेजमेंट को बहुत कम जुर्माने की सजा दी जाती है। लेकिन इन कानूनों को तोड़ने से मैनेजमेंट को जो मुनाफा मिलता है वह बहुत ज्यादा होता है। परंतु कानून तोड़ने पर मजदूरों को कहीं ज्यादा दंड दिया जाता है।

बहरहाल, साथ ही यह भी कहना उचित होगा कि जब मजदूर संगठित हो जाते हैं तो उन्हें कानून की ज़रूरत नहीं पड़ती। तब वे अपने लिए बेहतर परिस्थितियों हेतु स्वयं बातचीत कर सकते हैं और इस प्रक्रिया में वे अपने स्वाभिमान के अहसास को मजबूत कर सकते हैं। परंतु जब वे असंगठित होते हैं, तो कानूनी तौर पर जो उन्हें मिलना चाहिए, वह नहीं मिल पाता है। अतः अगर बातचीत के द्वारा, मजदूरों को कानूनन जो हक मिलना चाहिए, उससे कुछ कम भी मिले, तो भी यह उनकी हिस्सेदारी के बगैर सिर्फ़ कानूनी तौर पर मिलनेवाले फायदे से बेहतर

होगा, क्योंकि यह प्रक्रिया उनका आत्मविश्वास बढ़ाएगी। भारत में कानूनों की भूमिका तो है पर वह सिर्फ़ जनांदोलनों को मजबूत करने के संदर्भ में है, अलग से उनकी कोई भूमिका नहीं है।

सवाल - सन् 1980 के बाद से कोई भी बड़ा ट्रेड यूनियन आंदोलन सफल क्यों नहीं हो पाया?

नियोगीजी - हाल में किसी बड़ी हड़ताल के सफल न होने का कारण मुख्यतः आर्थिक मंदी है। उद्योगों में उत्पादन उद्देश्यहीन है। मैनेजमेंट कभी भी यह सवाल नहीं उठाता कि एक तयशुदा तरह का ही उत्पादन क्यों हो रहा है। इसी तरह पूंजी कहां और किस प्रकार लगाई जा रही है, इस पर भी सवाल नहीं उठाया जाता है। उदाहरण के लिए, भिलाई सयंत्र का, जो पूरी तरह से विदेशी बाज़ार पर निर्भर है, विस्तार किया जा रहा है, परंतु स्थानीय ज़रूरत के लिए उत्पादन करने वाले राऊरकेला का नहीं। चूंकि मैनेजमेंट के लिए स्थानीय ज़रूरत के अनुसार कदम उठाने की कोई मजबूरी नहीं होती, इसलिए उसे हड़ताल और उत्पादन में घाटे की कोई फ़िक्र भी नहीं करनी पड़ती है। जिस तरह से कुछ मिलों और चाय बागानों को 'बीमार' घोषित कर दिया जाता है, वह हमारी पूंजी लगाने की गलत नीतियों का जीता-जागता उदाहरण है। हमारे उद्योग जो पहले दुधारू गाय की तरह थे, अब उनके साथ 'पवित्र गाय' जैसा व्यवहार किया जा रहा है। उद्योगपति तब उद्योगों में कोई पूंजी नहीं लगाते जब उनसे मुनाफा हो रहा होता है। और जब उद्योग मुनाफा देना बंद कर देते हैं तब उनसे उस 'पवित्र गाय' की तरह व्यवहार किया जाता है, जिसे न तो मारा जाता है और न ही मरने दिया जाता है। वरन् उन्हें बूढ़ी गायों के किसी केंद्र में सुरक्षित रखा जाता है जहां उन पर दुर्लभ संसाधनों का अपव्यय किया जाता है। ऐसा इसलिए होता है चूंकि दबावों के कारण सही निर्णय लेना संभव नहीं होता और बीमार मिलों व चाय बागानों का अधिग्रहण सरकार को करना ही पड़ता है। इस तरह के पूंजी निवेश के कारण उद्योगों को उत्पादन के घाटे से कोई फ़र्क नहीं पड़ता है। इसी लिए हमारे ट्रेड यूनियन नेता हड़ताल पर जाना नहीं चाहते हैं। उदाहरण के लिए मुंबई

के कपड़ा मिलों की हड़ताल को ही लें। वह तात्कालिक मांगों या मजदूरों को मिले राजनीतिक फायदों, दोनों ही मोर्चों पर असफल रही है। पिछले कुछ समय से कोई भी हड़ताल सफल नहीं हुई है क्योंकि उद्देश्यहीन उत्पादन के चलते हड़ताल अब एक हथियार नहीं रही है।

सवाल - क्या मजदूर वर्ग आज अपनी ऐतिहासिक भूमिका निभा रहा है? इसे समझांएगे आप?

नियोगीजी - मजदूर वर्ग को उसकी ऐतिहासिक भूमिका निभानी ही चाहिए, लेकिन आज ऐसा नहीं हो पा रहा है क्योंकि नेतृत्व को अलग तरह से काम करने पर मजबूर किया जा जाता है। मजदूर आंदोलन में अर्थवाद तथा उद्देश्यहीन पूंजी निवेश तथा उत्पादन, नेतृत्व को उस रास्ते पर बढ़ने से रोक रहे हैं जिस रास्ते पर चलने से मजदूर वर्ग को अपनी ऐतिहासिक भूमिका निभाने में मदद मिलेगी।

सवाल - ट्रेड यूनियन आंदोलन में आए बिखराव पर कैसे काबू पाया जा सकता है?

नियोगीजी - मुझे लगता है कि मौजूदा बिखराव पर काबू पा लिया जाएगा। पहले हिंदुओं और मुसलमानों के बीच सांप्रदायिक द्वंद्व था और आज पश्चिम बंगाल में सी.पी.एम. (माकपा) और रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी के बीच या महाराष्ट्र में माकपा और श्रमिक संघटना या कष्टकरी संघटना के बीच है। गुणात्मक तौर पर ये टकराव पिछले सांप्रदायिक द्वंद्वों से अलग हटकर नहीं हैं, क्योंकि दोनों ही नेतृत्व के बीच की लड़ाइयां हैं और इस प्रक्रिया में मजदूर वर्ग पिट जाता है। मजदूरों में और अधिक वर्ग चेतना पैदा करके इस बिखराव पर काबू पाया जा सकता है। यहां ऐसा हुआ है। मेरी गिरफ्तारी के बाद सरकार ने मेरे नाम से विभिन्न आदेश जारी करके हड़ताल को खत्म करवाने की कोशिश की थी। परंतु मेरी अनुपस्थिति में भी हड़ताल जारी रही क्योंकि मजदूर उसे अपनी कार्रवाई मानते थे, न कि मेरी। दत्ता सामंत के नेतृत्व में प्रीमियर आटोमोबाइल्स की हड़ताल में भी ऐसा ही हुआ।

सवाल - ट्रेड यूनियन आंदोलन मुख्य रूप से आर्थिक मांगों और मजदूरों के काम से संबंधित मुद्दों तक ही सीमित रहा है। क्या फैक्ट्री गेट पर किया गया काम ही पर्याप्त है? क्या इसमें कुछ और जोड़ने की ज़रूरत है? किस प्रकार?

नियोगीजी - ट्रेड यूनियन को मजदूरों की बस्तियों तक आना पड़ेगा, क्योंकि ट्रेड यूनियन मजदूरों की ज़िंदगी का मात्र एक छोटा-सा हिस्सा भर नहीं है। बल्कि उसे मजदूरों की पूरी सामाजिक और सांस्कृतिक ज़िंदगी को प्रभावित करना होगा। अगर ट्रेड यूनियन मजदूरों की ज़िंदगी का एक अभिन्न अंग बन जाती है तो उनके बीच के विचारधारात्मक और राजनीतिक भेद मिट जाएंगे।

सवाल - जिस ट्रेड यूनियन से आप जुड़े हैं वह किस प्रकार की है? क्या आपको लगता है कि जिस यूनियन का आप नेतृत्व करते हैं वह पर्याप्त है? क्या आपके संगठन को किसी समस्या का सामना करना पड़ रहा है?

नियोगीजी - हम ट्रेड यूनियन के आर्थिक पक्ष से आगे जाने की कोशिश कर रहे हैं। मजदूर भी हमें ट्रेड यूनियन से कुछ अधिक ही मानकर चलते हैं। जो महिला वहां बैठी है, वह एक सामाजिक समस्या को लेकर यहां आई है और वह दूसरा आदमी अपने गांव की किसी जमीन की समस्या के बारे में चर्चा करने आया है।

परंतु हम यह नहीं कह सकते कि हम सफल हो गए हैं। अर्थवाद के अलावा, हमें यह भी याद रखना होगा कि सरकार हमारे नेताओं को भ्रष्ट करने की कोशिश कर रही है। उसे 5 प्रतिशत नेताओं और कुछेक मजदूरों को भी भ्रष्ट करने में सफलता मिली है। मैनेजमेंट के इस भ्रष्ट प्रभाव से जूझना टेढ़ी खीर है। हमें माहौल बदलना पड़ेगा। हम भ्रष्ट तौर-तरीकों के खिलाफ संघर्ष करके स्थिति को बदलने की कोशिश कर रहे हैं।

हम दूसरे मुद्दों को भी उठा रहे हैं। जैसे, यहां पर मजदूरों द्वारा शराब पीने की आदत एक प्रमुख समस्या है। ऐसा लगता है कि मजदूर बस्ती

में पानी के नलों से ज्यादा तो शराब की गैर-कानूनी दुकानें हैं। अपने गावों में कभी-कभार और सामाजिक उत्सवों पर शराब पीने वाले आदिवासी यहां आने पर ज़िंदगी में तनाव और असंतुलन के चलते आदतन शराबी बन जाते हैं। धीरे-धीरे मजदूर अपना स्वाभिमान तथा संगठित होने व सोचने की क्षमता खोने लगता है। इसके अलावा, शराब के ऊपर बहुत सा पैसा बर्बाद होने के कारण मजदूर और ज्यादा पैसे की मांग करते रहते हैं। इसके परिणामस्वरूप ट्रेड यूनियनें अर्थवाद के कुचक्र में उलझ गई हैं। मजदूर वर्ग की एकता धीरे-धीरे खत्म होती जा रही है।

हम इस मुद्दे पर काम करने के साथ-साथ मजदूरों के स्वास्थ्य जैसे अन्य मुद्दों को भी उठा रहे हैं। इस क्षेत्र के दूसरे संगठन भी हमारी तरफ एक ट्रेड यूनियन से कुछ अधिक होने की नज़र से देखते हैं। अपने-अपने आंदोलनों के तहत शराबबंदी का कार्यक्रम करने वाले लोग हमें अपनी सभाओं में बुलाते हैं। हम एक अस्पताल भी चलाते हैं और इस योजना को भी एक आदर्श के रूप में दूसरे अपना सकते हैं।

साथ ही सांस्कृतिक पक्ष को भी नज़रअंदाज नहीं किया जाता है। हर साल हम आदिवासी नेता शहीद वीर नारायण सिंह की बरसी पर समारोह का आयोजन करते हैं। किसी भी सरकारी आयोजन से कहीं ज्यादा लोग इस समारोह पर इकट्ठा होते हैं क्योंकि इसमें उन्हें अपनी संस्कृति की बेहतर अनुभूति मिलती है। उदाहरण के लिए, पिछले साल इस इलाके में पांच मंत्री वीर नारायण सिंह दिवस पर घूमें और लोगों को आकर्षित करने की कोशिश की। वे लोग पंद्रह हजार से ज्यादा लोगों को इकट्ठा नहीं कर सके, जिनमें से अधिकतर बाद में हमारे आयोजन में शामिल हो गए, जबकि हमारे आयोजन में करीब सत्तर हजार लोग मौजूद थे।■

खंड तीन

ट्रेड यूनियन आंदोलन - अर्थवाद का अंधकार या मुक्तिकामी रोशनी?

शंकर गुहा नियोगी के आलेख, साक्षात्कार एवं भाषण

- भारत के ट्रेड यूनियन आंदोलन की समस्याएं
- मजदूर संगठन, समाज परिवर्तन की दिशा में काम करें
- छत्तीसगढ़ के मजदूरों के पास नेतृत्त्व की कमी नहीं
- लाल-हरा झंडा इतिहास के कदमों पर
- लाल-हरे झंडे के संगठन

भारत के ट्रेड यूनियन आंदोलन की समस्याएं[18]

पहली बार यह लेख अगस्त 1990 में छमुमो की 'लोक साहित्य परिषद्' द्वारा एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया गया था। नियोगी की हत्या के बाद उनके कागजातों में 'इस्पात ट्रेड यूनियन : नयी दिशा की तलाश' शीर्षक की एक पांडुलिपि प्राप्त हुई। खोजबीन के बाद पता चला कि यह पांडुलिपि उस भाषण की है, जो नियोगी ने अक्तूबर 1982 में दल्ली राजहरा में 'अखिल भारतीय इस्पात समन्वय समिति' के तत्वावधान में आयोजित सम्मेलन में दिया था। '**भारत में ट्रेड यूनियन आंदोलन की समस्याएं**' लेख इसी भाषण पर आधारित है। फ़र्क केवल इतना है कि भाषण, इस्पात उद्योग की ट्रेड यूनियनों के संदर्भ में दिया गया था, जबकि यह लेख सभी प्रकार के उद्योगों की ट्रेड यूनियनों के संदर्भ में लिखा गया है। भाषण का यह पुनर्लेखन सन् 1984 में राजनांदगांव के कपड़ा मजदूर आंदोलन के दौरान मजदूर शिक्षण की दृष्टि से किया गया था।

- स.

किसी भी देश के विकास के लिए उद्योग की स्थापना एवं उसका निरंतर विकास होना ज़रूरी है। पिछली शताब्दी के अंत तक भारत में औद्योगिक विकास उल्लेखनीय नहीं रहा। अंग्रेज लौह-इस्पात, भारी मशीन, कपड़ा, दवाई आदि इंग्लैंड से मंगाकर अपना धंधा चलाते थे। मुनाफा बटोरना अंग्रेजों का एक मात्र उद्देश्य था।

सन् 1947 के बाद अंग्रेज तो चले गए लेकिन उनके धंधे ज्यौं-के-त्यौं रह गए। उसके बाद विभिन्न बहुराष्ट्रीय कंपनियों, विशेष रूप से अमरीकी, जापानी, फ्रांसीसी एवं जर्मन कंपनियों ने भारत के उद्योग-धंधों में हाथ डाला। हत्यारी यूनियन कार्बाइड उनमें से एक है।

उद्योग और भारत

वर्तमान समय में भारत के उद्योग-धंधे मूलतः तीन प्रकार के मालिक वर्ग के कब्जे में हैं -

---

[18]मूल पुस्तक से उद्धरित पृष्ठ संख्या : 194-208.

1. **सार्वजनिक क्षेत्र के मालिक** - देश में वर्तमान में सार्वजनिक क्षेत्र के तहत चालीस हजार करोड़ से भी अधिक लागत के कल-कारखाने, उद्योग-धंधे चल रहे हैं। इस्पात, बिजली, कपड़ा, रेल, कोयला, तेल आदि उद्योगों में ज्यादातर सार्वजनिक क्षेत्र का कब्जा है।

2. **बहुराष्ट्रीय कंपनियां** - विदेशी कंपनियों, विशेष रूप से साम्राज्यवादी देशों के पूंजीपतियों ने सारी दुनिया के उद्योग-धंधों पर अपने कब्जे जमा रखे हैं। सिर्फ़ समाजवादी देशों में ही इनके शिकंजे कमजोर हैं। साम्राज्यवादी दुनिया का मालिक वर्ग हमारे देश में भी इंजीनियरिंग, दवाई, आटोमोबाइल, चाय, रबर, केमिकल्स आदि क्षेत्रों में उद्योग-धंधा चला रहा है।

3. **इजारेदार पूंजीपति** - तीसरे, महत्वपूर्ण पूंजीपति हमारे ही देश के इजारेदार पूंजीपति हैं, जैसे - बिड़ला, टाटा, डालमिया, किर्लोस्कर, महेंद्रा आदि। देश में टेक्सटाइल, केमिकल्स, इस्पात आदि अनेकानेक उद्योग-धंधों पर इनका कब्जा है।

इसके अलावा कुछ पूंजीपति अपने उद्योग-धंधों के लिए जी-तोड़ कोशिश तो कर रहे हैं, लेकिन इन्हें अधिक कामयाबी नहीं मिल पा रही है। असंगठित रहने के कारण ये, सरकार व बहुराष्ट्रीय कंपनियों की शोषण की नीति का कुफल भोग रहे हैं और अपना गुस्सा अपने ही उद्योग में कार्यरत मजदूरों के ऊपर निकालते रहते हैं।

छत्तीसगढ़ में दिन-ब-दिन उद्योगों का विकास होता जा रहा है। औद्योगिक विकास की गुंजाइश भी प्रचुर है। जितना विकास अब तक हो चुका है, वह भी कम नहीं है।

यह सवाल बार-बार उठता रहता है कि छत्तीसगढ़ में औद्योगिक विकास के साथ तालमेल रखकर छत्तीसगढ़ की जनता का विकास क्यों नहीं हो रहा है? इस सवाल का जवाब संगठित मजदूर वर्ग ही दे सकता है। संगठित मजदूर वर्ग यदि अपनी ट्रेड यूनियन को एक स्कूल और हथियार के रूप में इस्तेमाल करे और संघर्ष एवं निर्माण के सिद्धांत पर आधारित अपने कार्यक्रम को आगे बढ़ाता जाए, तभी छत्तीसगढ़ का

मजदूर छत्तीसगढ़ के विकास के साथ अपना संबंध बना सकेगा, और स्वार्थी पूंजीपति वर्ग के किराये का टट्टू बन कर नहीं नाचेगा। हर क्षेत्र में मजदूरों का दबदबा बन सकेगा।

छत्तीसगढ़ के औद्योगिक मजदूर गुणात्मक सामाजिक परिवर्तन में एक निर्णायक इस्पाती नेतृत्व देने में कामयाब हो सकते हैं।

विभिन्न उद्योगों में फौलादी ट्रेड यूनियन नेतृत्व का अभाव क्यों है?

1. देश की जनता विभिन्न वर्गों[19] और राष्ट्रीयताओं[20] में बंटी हुई है। हर वर्ग के अपने अलग वर्ग-हित होते हैं और विभिन्न राष्ट्रीयताओं के हित भी अलग होते हैं। **अब तक भारत में वैज्ञानिक पद्धति और विचारधारा के अनुसार विभिन्न शोषित वर्गों और विभिन्न राष्ट्रीयताओं वाली जनता के बीच एकता का आधार नहीं बनाया गया है।** इस कार्य में ट्रेड यूनियनों की विशेष भूमिका को भी नज़रअंदाज किया गया है।
2. शोषक वर्ग अपनी बनाई व्यवस्था के ज़रिए ही जिंदा है। शोषण पर आधारित शोषक वर्ग की व्यवस्था को सिर्फ़ उस क्षेत्र विशेष की जनता की ज़रूरतों के मुताबिक क्षेत्र में उपलब्ध कच्चे माल का भरपूर उपयोग करते हुए एक नई उत्पादन पद्धति के विकास के ज़रिए, उस क्षेत्र की जनशक्ति के बलबूते पर, वैकल्पिक व्यवस्था कायम करने के लिए किए गए संघर्ष के द्वारा ही ध्वस्त किया जा सकता है। ट्रेड यूनियनों ने इस विषय पर कभी भी सृजनात्मक दिशा देने के लिए सोचा ही नहीं।
3. कुछ वर्ग मौजूदा व्यवस्था को बनाए रखना चाहते हैं, बाकी वर्ग इस व्यवस्था को खत्म करना और नई व्यवस्था को कायम करना चाहते हैं। इन परस्पर विरोधी वर्ग समूहों में जीत किसकी होगी? किसकी बात चलेगी? इसका साफ जवाब है कि जो वर्ग बुद्धि और भौतिक शक्ति में ज्यादा ताकतवार होगा, विजय उसी की होगी।

---

[19]जैसे मजदूर, किसान, पूंजीपति, छोटा व्यवसायी, जमीदार वर्ग आदि।

[20]जैसे छत्तीसगढी, उडिया, मराठी, तेलगू, बंगाली, तमिल, बिहारी, पंजाबी, झारखंडी, उत्तराखंडी आदि। भारत में ऐसे लगभग 42 राष्ट्रीयता समुदाय हैं।

वर्तमान समय में निश्चित रूप से पूंजीपति वर्ग तथा सामंतवादी तत्व ही अधिक बुद्धिमान और शक्ति-संपन्न हैं। उनकी बुद्धि का मुकाबला करने के लिए हमें अपनी बुद्धि का विकास करना होगा। इसके लिए चार काम साथ-साथ करना ज़रूरी हैं - **वर्ग संघर्ष, उत्पादन संघर्ष, वैज्ञानिक प्रयोग और इतिहास का अध्ययन।** हमारी शक्ति के विकास के लिए हमें व्यापक जनता को जगाने का काम लगातार करना होगा।

आज का ट्रेड यूनियन आंदोलन केवल इस पद्धति का उपयोग ही नहीं करता, बल्कि उसे ये बातें नापसंद भी हैं।

जहां पूंजीपति वर्ग एवं हर प्रकार के साम्राज्यवादी, इतिहास की हर घटना और वस्तुगत परिस्थिति से सीख लेते हैं, वहां आज भारत के ट्रेड यूनियनवादी लोग उसे दोहराने की सोचते है। यह तरीका अवैज्ञानिक है।

4. हमारे जैसे पिछड़े हुए देश में पूंजीपति वर्ग मजदूरों को ट्रेड यूनियन का अधिकार निम्नलिखित कारणों से देता है -

   क) दमन और शोषण से त्रस्त मजदूरों द्वारा अचानक बगावत करने की आशंका को निर्मूल करने के लिए;

   ख) उद्योगों में मालिक वर्ग द्वारा तय अनुशासन के दमन-मूलक नियमों व हर प्रकार के कानूनी बंधनों को ट्रेड यूनियन नेताओं के माध्यम से मजदूरों से स्वेच्छापूर्वक मनवाने के लिए;

   ग) सिर्फ़ आर्थिक संघर्ष के लिए मजदूरों को प्रोत्साहित करके मजदूरों के सोच को उसके उद्योग तक ही सीमित रखने के लिए; एवं

   घ) सह-अस्तित्व की नीति को सभी स्तरों पर प्रचारित और प्रतिष्ठित करने के लिए।

आज भारत की केंद्रीय ट्रेड यूनियनें मालिक वर्ग के इन्हीं उद्देश्यों को पूरा करने में लगी हुई हैं।

5. विभिन्न राष्ट्रीयताओं वाले हमारे देश में नौकरी की भर्ती नीति भी ट्रेड यूनियनों के मजबूत न होने का एक प्रमुख कारण है।

अंग्रेज साम्राज्यवादियों ने सन् 1917 की अक्तूबर क्रांति से उपयोगी शिक्षा हासिल की थी। उद्योग में उनकी भर्ती की नीति भी भारत में इस प्रकार की क्रांति की संभावनाओं पर रोक लगाने के लिए तय की गई थी। कहीं सर्वहारा के नेतृत्व में भारत में जनवादी लोकतांत्रिक क्रांति न हो जाए, इसके लिए उन्होंने काफी दूरदर्शिता दिखाई। किसी खास क्षेत्र में स्थित उद्योगों में उस क्षेत्र के लोगों को भर्ती न करके अन्य क्षेत्रों के लोगों को भर्ती किया गया। मध्य प्रदेश व झारखंड की कोयला खानों में 'सेंट्रल रिक्रूटमेंट आफिस' के माध्यम से गोरखपुरी मजदूरों को भर्ती किया गया। आसाम और बंगाल के चाय बागानों में छत्तीसगढ़ी और झारखंडी मजदूरों को भर्ती किया गया। झारखंड और बंगाल की कोयला खदानों में छत्तीसगढ़ी और गोरखपुरी मजदूरों को भर्ती किया गया।

क्षेत्रीय विकास में क्षेत्रीय जनता की भागीदारी ही राष्ट्रीय विकास की गांरटी है। क्षेत्रीय विकास में बाहर से आए हुए मजदूर दिलचस्पी नहीं लेते, क्योंकि उनकी राष्ट्रीयता, संस्कृति तथा आर्थिक पृष्ठभूमि अलग होती है। इस तरह चूंकि उद्योगों में अधिकांश मजदूर बाहरी क्षेत्रों से आए हुए हैं, इसलिए मजदूर वर्ग क्षेत्रीय विकास की मुख्य धारा से कट जाते हैं, नेतृत्व देना तो दूर की बात है। चूंकि इन मजदूरों की आर्थिक-सामाजिक जड़ें कहीं और हैं, इसलिए वे स्थानीय विकास के मुद्दों से जुड़ नहीं पाते। नतीजा होता है एक बहुत ही असंतुलित और विकृत विकास।

भारत के विभिन्न उद्योग-कारखानों में गोरे अंग्रेजों के इस तरीके को काले अंग्रेजों ने भी बड़ी वफ़ादारी के साथ अपनाया है। भिलाई के 90 प्रतिशत मजदूर दूसरे क्षेत्रों से आए हुए हैं। बोकारो में दक्षिण बिहार से आए मजदूरों की संख्या 20 प्रतिशत से अधिक नहीं है। दुर्गापुर इस्पात कारखाने में स्थानीय लोगों की कमी ने ही

वहां के ग्रामांचल में झारखंड की आवाज को जोरदार किया है। टाटा के कारखाने में भी आपको बहुत ही कम झारखंडी मिलेंगे।

एक तरफ तमाम सुविधाओं से भरपूर इस्पात नगरी, मानो एक गमले में सुंदर सा गुलाब का पौधा है, वहीं दूसरी तरफ घोर दरिद्रता के अंधकार में डूबे हुए गांव हैं। एक ओर अधिक वेतन पाने वाले संगठित मजदूर और दूसरी ओर गांव में भुखमरी के शिकार खेतिहर मजदूर, गरीब किसान और बेरोजगारों की फ़ौज। इसी प्रक्रिया से शासक वर्ग मजदूरों को दो टुकड़ों में बांटता है। अफसर और मैनेजमेंट के लोग करीब-करीब सभी बाहर के होते है। वे क्षेत्रीय विकास में कोई दिलचस्पी तो लेते ही नहीं, बल्कि जान-बूझकर क्षेत्र की प्रगति के लिए ज़रूरी संसाधनों को बरबाद कर देते हैं।

6. ट्रेड यूनियनों के कार्यक्रम भी अन्य राजनीतिक सिद्धांतों की तरह वैचारिक दिवालियापन के शिकार हैं। ट्रेड यूनियन मजदूरों का संगठन होता है। मजदूर वर्ग का वैज्ञानिक सिद्धांत उनको उस नए प्रकार की राजसत्ता कायम करने के लिए प्रेरित करता है, जो वर्तमान व्यवस्था की कब्र पर खड़ी की गई हो। **यह सिद्धांत पुराने को तोड़ने और नए का निर्माण करने का राजनीतिक सिद्धांत है।** ट्रेड यूनियन से उम्मीद की जाती है कि वह इसी सिद्धांत की रोशनी में काम करेगी। परंतु वर्तमान व्यवस्था ऐसी ट्रेड यूनियन को स्वीकार नहीं कर सकती, जो उसी की कब्र खोदे। जब वर्तमान व्यवस्था पाएगी कि ट्रेड यूनियन का व्यवहार उसके खिलाफ है तो वह ट्रेड यूनियन कानून को ही समाप्त कर देगी। ट्रेड यूनियन रहेगी या नहीं रहेगी, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि ट्रेड यूनियन ने समाज की सबसे प्रतिक्रियावादी, घृणित शक्ति को अपना दुश्मन करार देकर बाकी वर्गों के साथ तालमेल का नया सैद्धांतिक आधार बनाया या नहीं, प्रतिक्रियावादियों के आपसी द्वंद्व को तेज करने में मदद कर और एक लचीली कार्य-पद्धति पर अमल करते हुए हर मामले में अगुवाई की भूमिका स्वीकार की या

नहीं, एक बुनियादी सामाजिक परिवर्तन के लिए मजदूर वर्ग को जागरूक किया या नहीं।

आज की केंद्रीय ट्रेड यूनियनें इस दिशा में किसी भी प्रकार की नीति अपनाने के बदले, सिर्फ़ सरकार के राजनीतिक दबाव का इस्तेमाल करके मैनेजमेंट की मदद से ट्रेड यूनियन नाम की दुकानदारी चला रहीं हैं। चाहे बाहरी रूप कुछ भी हो, सभी केंद्रीय ट्रेड यूनियनें दलाली की चैम्पियनशिप हासिल करने की होड़ में लगी हुई हैं।

7. राजनीतिक 'पंडितों' की स्वेच्छाचारिता के कारण भी भारत में ट्रेड यूनियन आंदोलन सही ढंग से विकसित नहीं हो पाया है। अंग्रेजों के जमाने में एटक यूनियन के कम्युनिस्ट हिस्से ने समाजवादी क्रांति की आवाज बुलंद करके, उग्रवादी लाइन चलाकर मजदूर आंदोलन का सर्वनाश किया (शोलापुर का इतिहास उल्लेखनीय है)। सन् 1946-47 में भी बी. टी. रणदिवे ने समाजवादी क्रांति कहकर तेलंगाना आंदोलन को गुमराह किया। एटक यूनियन का कांग्रेसी हिस्सा उधर उद्योगों में संघर्ष पनपने न देकर मालिक वर्ग की तरफदारी करता रहा। यही हिस्सा स्वतंत्रता के बाद इंटक यूनियन बनकर सरकारी ट्रेड यूनियन के रूप में सामने आया। आज कम्युनिस्ट पार्टियों की यूनियनें इंटक की 'दिलदार' भावना से ओत-प्रोत हो चुकी हैं। चारु मजुमदार के नेतृत्व में नक्सलवादी संघर्ष ने मजदूर वर्ग में नई आशा का संचार किया था, लेकिन उन्होंने भी बाद में ट्रेड यूनियन में संशोधनवादी नेतृत्व के खिलाफ संघर्ष न करके 'ट्रेड यूनियन छोड़ दो' वाले पलायनवादी सिद्धांत की प्रतिष्ठा की।

इन स्वेच्छाचारी राजनीतिक पंडितों की कृपा से ट्रेड यूनियनें भारत की मेहनतकश जनता की इच्छा के मुताबिक अपने को कभी भी नहीं ढाल पाईं। जो आया वह पछताया और जो नहीं आया वह भी पछताया। आज भी हरेक ट्रेड यूनियन के सदस्य-मजदूर अपने व्यक्तिगत हित और अपने उद्योग के मजदूरों के हित को देश की

तमाम जनता के हितों के साथ मिलाकर, यानी साधारण को विशेष के साथ जोड़कर नहीं देख पाते। पश्चिम बंगाल के कारखानों में यह कहावत प्रचलित है कि 'वोट के लिए तिरंगा झंडा, पेट के लिए लाल झंडा।' इसी सिलसिले में उनकी नई उपलब्धि है 'चोट के लिए सगा भाई'।

भारत की ट्रेड यूनियनें राजनीतिक पार्टियों पर अपना प्रभाव तो डाल नहीं पाई हैं, बल्कि निराशाग्रस्त नेताओं ने ट्रेड यूनियनों पर हावी होकर सारे मजदूर आंदोलन को भंवरजाल में फंसा दिया है।

8. **ट्रेड यूनियन मजदूर वर्ग का हथियार है।** ठोस ढंग से इस हथियार का उपयोग करने की विधि है - जनवादी केंद्रीयता। संघर्ष का निर्णय, रणनीति और संगठन से संबंधित मामलों में फैसला जनवादी तरीके से करना चाहिए एवं इन फैसलों को केंद्रीयता के मातहत लागू करना चाहिए। कभी-कभी भारी संख्या में मौजूद या दूर-दूर तक छितराए हुए मजदूरों में सामान्य ढंग से इस विधि का उपयोग करने में दिक्कत आती है। इस स्थिति में विभिन्न इकाइयों में व्यापक चर्चा चलाकर और 'जनता से, जनता को' वाले सिद्धांत को लागू करके, जनता की विस्तृत भागीदारी और मुद्दों के प्रति उसकी समझ व चेतना को सही निर्णय-प्रक्रिया का आधार बनाया जा सकता है।

   आज की तमाम केंद्रीय ट्रेड यूनियनें इस पद्धति का उपयोग नहीं करती हैं। वहां निर्णय ऊपर से थोप दिया जाता है। वास्तविक समस्या, मजदूर वर्ग की विचारधारा, अत्याचारी ताकतों द्वारा निर्दयतापूर्वक दमन आदि के विषय में नेतृत्व लापरवाह रहता है। ये यूनियन वाले श्रम कानून पर, श्रम कानून लागू करने वाली शोषक वर्गों की मशीनरी एवं कानूनी व्यवस्था के मसलों की जरूरतों पर अधिक ध्यान देते हैं। ये लोग इन मामलों में मजदूर वर्ग की अज्ञानता और निस्पृहता (निस्वार्थ भाव) का लाभ उठाकर नौकरशाही यानी सिर्फ केंद्रीयता की पद्धति से तमाम मामलों का निराकरण या निपटारा करते हैं। इसी प्रकार आज की ट्रेड

यूनियनें एक भयावह स्थिति पैदा कर चुकी हैं। इससे ट्रेड यूनियनों को बनाए रखने की पूंजीपतियों की जरूरतें भी पूरी नहीं हो रही हैं, मेहनतकशों के हथियार के रूप में ट्रेड यूनियन का इस्तेमाल करना तो दूर की बात है।

फलस्वरूप, मजदूरों पर ट्रेड यूनियन का कोई प्रभाव नहीं रहता है। मजदूर ट्रेड यूनियन के सदस्य नहीं बनते और न ही सदस्यता शुल्क देते हैं। काल्पनिक नामों से सदस्यता रजिस्टर भरे रहते हैं, एक से अधिक यूनियन एक मजदूर की सदस्यता का दावा करती हैं। मजदूर हंसता है कि उसने विभिन्न यूनियनों को बेवकूफ बना दिया और यूनियन वाले हंसते हैं कि मजदूर बेवकूफ बन गया और पूंजीपति इन दोनों की बेवकूफी पर हंसता है और खुद को अधिक सुरक्षित महसूस करता है। मजदूरों की मामूली-से-मामूली समस्या का निपटारा भी ठेके में होता है। इस नौकरशाही या अति-केंद्रीकृत तरीकों के चलते मालिक का उद्देश्य पूरा न होने पर भी वह खुश रहता है। मालिक या मैनेजमेंट मजदूरों में से 10-20 प्रतिशत 'लायक' मजदूरों को छांट लेता है और उनको प्रमोशन, ओव्हर-टाईम, 'कामचोरी की छूट' या अन्य सुविधाएं देकर अपना समर्थक गुट बना लेता है। इस गुट के लोग हर यूनियन में घुसपैठ करते रहते हैं। ऐसे उद्योग में मजदूरों का जीवन गुलाम से भी बदतर होता है, तानाशाही दमन का तरीका जारी रहता है। उधर मालिक के पैर चाटने वाले कुत्ते अपने गले में लगे बेल्ट को फूलमाला मानकर अपने आपको गौरवान्वित महसूस करते रहते हैं।

नौकरशाही या सिर्फ केंद्रीयता की पद्धति के साथ-साथ एक और भी कार्यशैली है जिसका खतरा नज़र आता है। यह कार्यशैली है - ट्राट्स्कीवादियों का पथ। यह सिर्फ़ जनवादी प्रक्रिया को ज़रूरत से अधिक महत्व देने का पथ है। हालांकि यह पद्धति भी जनवादी प्रक्रिया को सिर्फ़ रोजमर्रा के छोटे-मोटे मसलों में ही लागू करती है। रणनीति तो मानो किसी अदृश्य स्थान से आ धमकती है। प्रश्न उठने पर, संगठन के बड़े आकार का बहाना लेकर इसकी बात

टाल दी जाती है। अंततः कार्य पद्धति में जो भी जनवादी प्रक्रिया का इस्तेमाल होता है, उससे 'जन' गायब हो जाता है, और केवल 'वाद' बचा रहता है। फिर 'वाद' को लेकर विवाद पैदा होता है। जितने सिर, उतने ही मत और उतने ही पथ। इस प्रकार बहु-केंद्रीयता से संगठन का शरीर कैंसर की बीमारी का घर बन जाता है। आज की कई सोशलिस्ट ट्रेड यूनियनों की ऐसी ही दयनीय स्थिति हो गई है। हालांकि इस प्रकार की ट्रेड यूनियनों को पूंजीपति अधिक महत्व देते हैं, लेकिन मजदूर वर्ग की एकता की भावना का फायदा उठाते हुए नौकरशाही वाले ट्रेड यूनियन अधिक कामयाब रहते हैं।

मात्र जनवादी केंद्रीयता की पद्धति ही ट्रेड यूनियन की सही पद्धति हो सकती है।

9. मजदूर वर्ग की सही राजनीतिक पार्टी के अभाव में तथा सही ट्रेड यूनियन के न रहने से आज 'नेता' शब्द अपनी इज्जत-आबरू खो बैठा है। स्वार्थी, अनैतिक और उच्छृंखल जीवन जीने वाले असामाजिक तत्वों के झुंड और गुंडा प्रकृति के निर्दयी व्यक्ति जब माइक के सामने खड़े होकर लम्बी-चौड़ी हांकने में माहिर होते हैं, दरोगा साहब से दोस्ती गांठते हैं और पद-रूपी सिंहासन पर कब्जा रखने की शैली अख्तियार कर लेते हैं तथा देश व प्रांत की राजधानियों में नियमित संपर्क साधते हुए आम जनता को आश्वासनों के भंवरजाल में घुमाते रहते हैं, तब ऐसे व्यक्ति 'नेता' कहलाते हैं। ऐसे नेताओं से जनता दिलोदिमाग से नफ़रत करती है।

एक और प्रकार के नेता होते हैं। ये मार्क्स और लेनिन की किताबों के नाम जानते हैं, और समय-समय पर उन नामों को उद्धृत करते हुए अपनी विद्वत्ता को जाहिर करते रहते हैं। ये लोग अर्जी-अपील लिखने में माहिर होते हैं और उत्पादन से विमुख रहते हैं। ये लोग घरेलू झगड़ों की व्याख्या भी अंतर्राष्ट्रीय और ऐतिहासिक महत्व की घटनाओं की रोशनी में करने की कोशिश करते हैं। तर्क में ये

लोग रातें गुजार देते हैं, जो कुछ कहते हैं वह करते नहीं और जो करते हैं वह कहते नहीं। वे ज्यादा माला-माल नहीं होते, फिर भी रंगीन जिंदगी जीने के शौकीन होते हैं। मजदूर इन नेताओं का विश्वास नहीं करते, ये नेता मजदूरों का विश्वास नहीं करते। ऐसे ही नेताओं से सुशोभित ट्रेड यूनियनों ने मजदूरों के जीवन को दूभर बना दिया है।

संगठन हो या आंदोलन, नेतृत्व का सवाल एक महत्वपूर्ण सवाल है। एक साधारण व्यक्ति के गलत विचारों या कार्यों से अधिक लोगों को नुकसान नहीं होता, परंतु नेतृत्व के गलत विचारों और कार्यों से लाखों-करोड़ों की जिंदगियां बुरी तरह प्रभावित होती हैं। इसीलिए नेतृत्व के बारे में सही जानकारी होना ज़रूरी है।

नेतृत्व को अपने वर्ग का सबसे अधिक वर्ग-चेतना से भरपूर अंश होना चाहिए। यह बात पूंजीपति वर्ग पर भी उतनी ही लागू होती है जितनी मजदूर वर्ग पर।

सबसे अधिक वर्ग-चेतना से भरपूर होने के तरीके का ज़िक्र पहले ही किया गया है। यह चार-सूत्री तरीका है - **वर्ग संघर्ष, उत्पादन संघर्ष, वैज्ञानिक प्रयोग और इतिहास का अध्ययन।** वर्तमान व्यवस्था के अंतर्गत ट्रेड यूनियनों में बिना वर्ग संघर्ष के भी नेतागिरी चलती है। लेकिन अगर इस व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष करना है तो अवश्य ही सामंतवादी-पूंजीवादी, और प्रतिक्रियावादी शक्तियों के खिलाफ संघर्ष में नेतृत्व को खुद भी बहादुरी के साथ भाग लेना होगा। अक्सर देखा जाता है कि जब जनता आंदोलन करती है तब नेतृत्व चुपचाप मुंह छिपाकर भाग जाता है। जो आदमी कर्फ्यु और 144 धारा के जमाने में सिर के बाल नोचता है, वही स्थिति शांत होने पर नेता बन जाता है। इससे मजदूर आंदोलन पूंजीपतियों की राह पर चलने लगता है।

वर्ग संघर्ष में निडरता से भाग लेना सही नेतृत्व की पहली कसौटी है। दूसरी कसौटी है उत्पादन संघर्ष। ऐसे कामचोर आदमी जिनको उत्पादन के काम में कोई दिलचस्पी नहीं, वह नेतृत्व के

लायक नहीं हैं। दीवाली के पहले घर में मकड़ी के जालों की सफाई करने की तरह मजदूर वर्ग को अपने ट्रेड यूनियन रूपी घर से ऐसे उत्पादन-विमुख नेताओं का सफाया कर देना चाहिए।

नेतृत्व तभी सही नीति का निर्धारण और कार्य पद्धति का उपयोग कर सकेगा, जब वह **साधारण परिस्थिति को विशेष परिस्थिति के साथ जोड़ सके।** अगर हड़ताल करना है तो नेतृत्व को यह समझ होनी चाहिए कि मुख्य मुद्दा क्या होगा, हड़ताल का यह उचित समय है या नहीं। अगर नेतृत्व इस पर सही निर्णय नहीं ले सकता तो आंदोलन में मार खाने की पूरी गुंजाइश रह जाएगी। साधारण परिस्थिति की जानकारी, वैज्ञानिक प्रयोग और इतिहास की जानकारी के ज़रिए ही हो सकती है। सफल नेतृत्व की कसौटी है, साधारण परिस्थिति की पूर्ण जानकारी और विशेष परिस्थिति में उस जानकारी को लागू करने की क्षमता। नेतृत्व को व्यक्तिगत तौर पर महत्वाकांक्षी नहीं होना चाहिए। ईमानदारी और कुर्बानी, नेतृत्व के साथ श्वास-निःश्वास की तरह जुड़े हुए गुण होने चाहिए। तभी वह नेतृत्व लोकप्रिय हो सकता है और उस नेतृत्व पर भरोसा करके लाखों लोग जान हथेली पर रखकर संघर्ष में कूद जाएंगे।

10. आज की ट्रेड यूनियनें अर्थवाद से बुरी तरह ग्रस्त हैं। आर्थिक मांग के लिए संघर्ष करना अर्थवाद नहीं है। परंतु जब संघर्ष केवल आर्थिक मांग के लिए होता है और आर्थिक मांग के अलावा बाकी तमाम राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक सवालों को ताक पर रख दिया जाता है, तब इस प्रकार की नीति को अर्थवाद कहा जाता है। यह एक खतरनाक नीति है। आज की ट्रेड यूनियनें ऐसे ही खतरनाक रास्ते पर चल रही हैं। इससे ट्रेड यूनियनों के जीवन की सजीवता समाप्त हो चुकी है और सूखी लकड़ी पर बढ़ई द्वारा रंदा चलाए जाने की तरह मजदूरों की जिंदगी के सांस्कृतिक सामाजिक और राजनीतिक पहलुओं में निराशाजनक कृत्रिमता लाकर उन पर पूंजिपतियों के राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विचारों को थोपा जा रहा है।

हमें ऐसी रंदा लगाई गई लकड़ी की ज़रूरत नहीं है। हम एक सजीव सुंदर वृक्ष की तरह का जीवन अपने अंदर समा लेना चाहते हैं। पूंजीपति मजदूरों को आधे-अधूरे, विकृत एवं कमजोर बनाकर रखना चाहते हैं। पूंजीपति मजदूरों को एक सस्ती कीमत की निर्जीव वस्तु की तरह बनाकर रखना चाहते हैं। इससे उनके मालामाल होने की प्रक्रिया सुरक्षित रहने की गारंटी हो जाती है।

पूंजीवादी विचारों वाले अवसरवादियों ने मजदूर आंदोलन को गुमराह करने के लिए अर्थवाद को जारी किया है। इन अवसरवादियों को संशोधनवादी कहा जाता है। ये मजदूरों की वैज्ञानिक विचारधारा का विरोध करते हैं और पूंजीपतियों के बताए रास्ते पर मजदूरों को ले जाने की कोशिश करते हैं।

नतीजा यह हो रहा है कि आज देश में तमाम ट्रेड यूनियनों के सामने साल में एक बार बोनस की लड़ाई लड़ने और तीन या पांच साल में एक बार वेतनमान बदलने की लड़ाई लड़ने के अलावा दूसरा कोई कार्यक्रम नहीं रह गया है। तमाम केंद्रीय ट्रेड यूनियनों का काम सिर्फ़ प्रमोशन के लिए सिफारिश करना या चार्जशीट का जवाब देने की दुकानदारी तक सीमित रह गया है।

उत्पादन की नीति का निर्धारण पूंजीपति करता है। इससे धड़ल्ले से मशीनीकरण का राक्षस मजदूरों की नौकरियों को खाये जा रहा है। राजनीति करने की जिम्मेदारी ठेकेदारों, शराब ठेकेदारों, मालगुजारों आदि शोषक वर्ग को सौंप दी गई है।

संस्कृति का ठेका मुंबई के स्मगलर और अन्य काले पैसे के पूंजीपतियों को दे दिया गया है, जो ढिसुम-ढिसुम और नंगे नाच वाली कुसंस्कृति को जनसंस्कृति बनाने में ओव्हर-टाईम कर रहे हैं।

शराब के नशे में पूरा देश बेहोश है, महिलाओं पर अत्याचार जारी है और इधर ट्रेड यूनियनों के पास सिर्फ़ एक ही कार्यक्रम है, 'बोनस दो, बोनस दो।' पैसा बढ़ता है, मंहगाई और भी बढ़ती है, मजदूर की जेब खाली हो जाती है और सूदखोर के चंगुल में जा

फंसता है। ठेकेदार पैसा बढ़ाता है और शराब ठेकेदार उसे लूट ले जाता है। घर की औरत भार खाती है, बच्चों को भूखे रहना पड़ता है और मजदूर झोपड़ियों में सदा सोया रह जाता है।

आज बैंक, जीवन बीमा, गोदी (डॉक) वगैरह उद्योगों में अर्थवाद इतनी मजबूत जड़ें जमा चुका है कि वहां मजदूरों के सामने अपने उद्योगों को छोड़कर दूसरे उद्योगों के मजदूरों के मामलों और संघर्षों के बारे में कोई विचार ही नहीं रहता है। इन उद्योगों में ट्रेड यूनियन का नेतृत्व मजदूरों को आत्म-केंद्रित और संवेदनहीन बना चुका है।

अर्थवाद के एक और प्रकार का नमूना रेल उद्योग में देखने को मिलता है। यहां हर मजदूर अपने विभाग के महत्व और विभाग की समस्या से ही घिरा रहता है। वहां जब गार्ड साहब हरी झंडी दिखाते हैं तब गैंगमैन अपनी लाल झंडी दिखाकर बैठ जाते हैं। वहां पर लाल-हरे को मिलाकर सारे रेल मजदूरों को संगठित करने का प्रयास आज नहीं किया जा रहा है। अल्प समय के लिए सन् 1974 की ऐतिहासिक रेल हड़ताल ने इस दिशा में एक उम्मीद को जन्म दिया था, जिसकी गाड़ी केंद्रीय यूनियनों के चक्कर में फिर पटरी से उतर गई। इसके फलस्वरूप 146 स्वतंत्र यूनियनों को इस तरह तानाशाही हमलों का शिकार होना पड़ा और अभी तक वे फिर से खड़ी नहीं हो पाई हैं। इस्पात उद्योग में भी इस तरह का संशोधनवादी प्रयास जारी है। इसी कारण चार्जमैन, क्रेन आपरेटर, हर्थमैन आदि मजदूरों को अलग-अलग संगठनों में संगठित करने की कोशिश चल रही है। फिर भी स्टील प्लांट की इंटीग्रेटेड (समन्वित) उत्पादन व्यवस्था के कारण इन प्रयासों को मैनेजमेंट का पूर्ण समर्थन नहीं मिल पा रहा है।

अर्थवादी लोग चाहे जितना भी आर्थिक मांगों के बारे में आवाज बुलंद करें, फिर भी ट्रेड यूनियनों के कार्यकर्त्ता इस बारे में वाकिफ़ हैं कि,

क) सन् 1947 या सन् 1960 के मूल्य सूचकांक के साथ आज के मूल्य सूचकांक की तुलना की जाए तो हम देखेंगे कि इन 43 सालों या 30 सालों के बीच मजदूरों का वेतन रुपयों में बढ़ा है, लेकिन असली वेतन घटा है। मतलब यह हुआ कि आर्थिक संघर्षों और समझौतों की लंबी प्रक्रिया के बाद भी कुछ हासिल नहीं हुआ, बल्कि शोषण और भी बढ़ा है।

ख) आर्थिक मांगों के बारे में ट्रेड यूनियनों का दिमाग सरकार (राज्य) और मैनेजमेंट द्वारा निर्देशित होता है। जैसे कि हर बार वेतन संशोधन (वेज रिवीज़न) में देखा जाता है कि वहां पुनर्विचार के लिए विशेष समयावधि का प्रावधान दिया रहता है। या, राज्य द्वारा विज्ञप्ति (नोटिफिकेशन) जारी करने के अधिकार और विभिन्न कमीशनों की सिफारिशों को मजदूरों के सामने रखकर सरकार ट्रेड यूनियनों को लालायित करती रहती है।

ग)सरकार विभिन्न श्रम कानूनों को गोल-मोल बनाकर इस व्यवस्था के अंदर ही गुंजाइश की मरीचिका दिखाती है।

घ) उद्योगों और अंचलों के आधार पर अलग-अलग वेतनमान बनाकर सरकार एक 'परिवर्तनशील लक्ष्मण रेखा' खींच देती है। अंग्रेजों के जमाने में जिस तरह अंग्रेज लोग रियासतों के लिए अलग-अलग कानून बनाकर रियासतों की जनता के मुंह से 'अंग्रेजों का कानून लागू करो' वाली मांग उठवाने का जो साम्राज्यवादी तरीका अपनाए हुए थे, आज उसी तरीके से सरकार अर्थवाद को बढ़ावा दे रही है। एक उद्योग के मजदूर दूसरे उद्योग के मजदूरों के समान वेतन हासिल करने की कोशिश में सारी जिंदगी बिता देते हैं।

च) 'कुछ छोड़ो-कुछ लो' ('गिव एंड टेक') की नीति इस स्थिति में जड़ पकड़ लेती है। विजय का नहीं, बल्कि समझौते का पाठ पढ़ाया जाता है। जबकि हर समझौते को लागू करने की समस्या हमेशा बनी ही रहती है। **'इंकलाब जिंदाबाद' के नारे के साथ 'वेतन-समझौता जिंदाबाद' के नारे से आसमान गूंजता रहता है, पर इंकलाब कभी नहीं आता।**

आज केंद्रीय ट्रेड यूनियनें अर्थवाद के गड्ढे में फंस चुकी हैं। आर्थिक मंदी के युग में कर्ण का रथ जमीन में धंसता जा रहा है, कर्ण जितना ही रथ हांकता है, रथ उतना ही धंसता जाता है। कर्ण अपने ही रथ में बंदी बना हुआ है।

इस हालत में नेता मजदूरों को सांत्वना देता है - 'हो रही है, बातचीत हो रही है', 'कुछ मिला है', 'कुछ दिला देंगे।' मजदूर अब आश्वासनों से खुश नहीं है। अब मजदूर बढ़ चला है, सेनापति पीछे छूट रहा है। पीछे फंसा हुआ सेनापति मजदूरों को उग्रवादी कहकर, वामपंथी भटकाव और पृथकतावाद की दुहाई देकर अपने आपको व्यवस्थारूपी एवं राज्यरूपी भगवान के सामने निर्दोष बता रहा है। मजदूर वर्ग केंद्रीय ट्रेड यूनियनों को हटाकर स्वतंत्र ट्रेड यूनियनों का निर्माण कर रहा है। लेकिन अधिकांश स्वतंत्र ट्रेड यूनियनें भी उसी राह की राही हैं।

हमें अर्थवाद का अंधकार नहीं, आर्थिक संघर्ष के साथ-साथ मुक्ति का आलोक भी चाहिए, एक इज्जतदार मजदूर वर्ग की प्रतिष्ठा चाहिए, नई संस्कृति की शुद्ध हवा चाहिए, एक क्रांतिकारी ट्रेड यूनियन चाहिए।■

भाषण के जो अंश उपरोक्त लेख ('भारत में ट्रेड यूनियन आंदोलन की समस्याएं') में शामिल नहीं किए गए थे, वे निम्नांकित हैं -

1. **'इस्पात और भारत'** (भाषण का प्रारंभिक अंश); एवं
2. **'स्वास्थ्य और ट्रेड यूनियन'**, **'महिला और ट्रेड यूनियन'** व **'हमारी कार्यशैली'** (भाषण का अंतिम अंश)।

नियोगी के विचारों की पूर्णता को ध्यान में रखते हुए हम इन अशों को भी यहां प्रस्तुत कर रहे हैं। - स.

इस्पात और भारत

भारत एक विशाल देश है। विभिन्न राष्ट्रीयताओं की सांस्कृतिक तथा आर्थिक विविधता इस देश की विशेषता है। 18वीं शताब्दी में सामंतवादी भारत पर औद्योगिक रूप से विकसित साम्राज्यवादी अंग्रेजी हुकूमत ने आसानी से कब्जा कर लिया था। तब से देश की जनता लगातार भूख, बेरोजगारी, निरक्षरता, बीमारी और कुसंस्कृति के अंधकार में छटपटाती रही है। यह सिलसिला आज भी जारी है।

देश के विकास के लिए इस्पात बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इस्पात के समुचित उत्पादन के बिना औद्योगीकरण तथा अन्य मामलों में विकास संभव नहीं है।

पिछली शताब्दी के अंत तक भारत में उपयोग में आने वाला अधिकांश इस्पात इंग्लैंड से आता था। रेल लाइन, पुल बनाने के लिए बीम, चैनल से लेकर छुरी, कैंची, रांपी और बेलचा तक विदेश से आता था। भारत में सन् 1907 में टाटा ने पहला स्टील का कारखाना खोला। सस्ते मजदूरों और कच्चे माल से इस्पात का उत्पादन करके टाटा ने काफी मुनाफा बटोरा। अंग्रेज पूंजीपतियों ने भी मशीनें बेचकर तथा भारत में उत्पादन पर कर लगाकर ढेर सारा मुनाफा कमाया।

इस्पात उत्पादन में उच्च तकनीक और भारी पूंजी निवेश की ज़रूरत होती है। इसलिए आजादी के बाद सत्ता में आए नए-नए पूंजीपतियों ने इस्पात उद्योग को सार्वजनिक क्षेत्र के अंतर्गत चलाने का फैसला किया।

इस्पात महत्वपूर्ण क्यों है?

1. आज भारत में सार्वजनिक क्षेत्र में लगी करीब 40,000 करोड़ रुपये की कुल पूंजी में से 10,000 करोड़ रुपए तो अकेले इस्पात उद्योग में लगे हैं।
2. इस्पात उत्पादन में लगी तकनालाजी और इस्पात की खपत की प्रकृति से हम देश में औद्योगिक विकास के स्तर को जान सकते हैं।

3. औद्योगिक मजदूर, मजदूर वर्ग का सबसे आगे बढ़ा हुआ हिस्सा है। केवल औद्योगिक मजदूर वर्ग के नेतृत्व में ही सामाजिक विकास में गुणात्मक परिवर्तन लाना संभव है। इस्पात मजदूर उच्च तकनीकी ज्ञान से लैस औद्योगिक मजदूर हैं।
4. संख्या की दृष्टि से भी देश में रेल, कोयला और टेक्सटाइल मजदूरों की तरह इस्पात मजदूरों की संख्या भी काफी अधिक है। देश के विभिन्न इस्पात कारखानों में कुल मिलाकर तीन लाख से अधिक मजदूर काम कर रहे हैं।
5. देश के तमाम इस्पात कारखाने और उनके कच्चे माल के स्रोत देश के सबसे पिछड़े हुए क्षेत्रों में स्थित हैं। ये कारखाने और खदानें ऊबड़-खाबड़ जंगलों और पहाड़ों वाले हरिजन-आदिवासी इलाकों से घिरे हुए हैं।

स्वास्थ्य और ट्रेड यूनियन

शायद ही कभी भारत में ट्रेड यूनियनों ने मजदूरों के स्वास्थ्य के सवाल को अपने समग्र कार्यक्रम के अंतर्गत एक स्वतंत्र मुद्दे के रूप में शामिल किया है। जब कभी ऐसा किया भी तो उन्होंने इस सवाल को पूंजीवाद के वैचारिक ढांचे के अंतर्गत ही रखा है। इस प्रकार ट्रेड यूनियनों ने चिकित्सा की पर्याप्त सुविधा, कार्यस्थल पर लगी चोटों या विकलांगता का मुआवजा और काम में विकलांग हुए लोगों को मानवीय दृष्टि से वैकल्पिक रोजगार देने जैसे मुद्दों तक ही अपने को सीमित रखा है। यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि इस परंपरागत विचार-पद्धति के दायरे में भी काफी कुछ करना अभी बाकी है। फिर भी, **यह विचार-पद्धति पूंजीवाद के इस मूल वैचारिक आधार को मानकर चलती है कि श्रम शक्ति एक ऐसा 'माल' (या 'जिंस') है, जिसे कोई मालिक उतनी ही कीमत पर खरीदता है जिससे कि उत्पादन प्रक्रिया में उसे अधिकतम मुनाफा मिल सके।**

इसी सिलसिले में हम देखते हैं कि औद्योगिक और पेशे से संबंधित स्वास्थ्य के मामले में भी मालिक-मैनेजमेंट के साथ बातचीत और समझौता वार्ता का आधार हमेशा यही रहा है कि मजदूरों के स्वास्थ्य पर

'स्वीकार्य' स्तर तक खतरनाक असर डालने वाले काम के हालात में उनको काम करने दिया जा सकता है। सवाल है - स्वीकार्य किसको? मजदूरों को या मैनेजमेंट को?

आज इसकी तुरंत ज़रूरत है कि ट्रेड यूनियन एक वैकल्पिक वैचारिक आधार पर स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाने वाले खतरनाक हालात के मानदंडों के सवाल को मौलिक रूप से उठाए ताकि मजदूरों के हितों को (यहां उनके स्वास्थ्य के हितों को) प्राथमिकता देते हुए उत्पादन की प्रक्रिया को निर्धारित किया जाए।

इस्पात उद्योग के अंदर काम से संबंधित कुछ उदाहरणों की चर्चा की जा सकती है, जैसे कोक ओवन के मजदूरों द्वारा सांस में ली गई गैसों से उनके स्वास्थ्य को खतरे की संभावना; ब्लास्ट फ़र्नेस, रोलिंग मिल, एक्ज़ॉस्टर हाउस गैस बूस्टर, पावर जनरेटर, स्टील मेल्टिंग शॉप आदि में गर्मी और शोर से मजदूरों के स्वास्थ्य को होने वाली क्षति का सवाल। खदानों में मजदूरों को पर्याप्त व साफ ठंडा पानी और विश्राम स्थलों का सवाल प्रमुख मुद्दे हैं।

औद्योगिक दुर्घटनाओं के पूरे मसले पर भी मौलिक रूप से पुनर्विचार करने की तुरंत ज़रूरत है। कारखानों और खदानों में मजदूरों की सुरक्षा की स्थिति इतनी खराब है तथा इस कदर बदतर होती जा रही है कि वहां इन घातक तथा विकलांगकारी घटनाओं को 'दुर्घटना' कहने से गलत मतलब निकलता है। ये घटनाएं आकस्मिक नहीं हैं, बल्कि ये सचमुच में वास्तविक उत्पादन प्रक्रिया के भौतिक स्वरूप के साथ जुड़ी हुई अनिवार्यताएं हैं।

विकलांग हुए मजदूरों को फिर से सामान्य जीवन में शामिल (रिहेबिलिटेट) करने और उनको वैकल्पिक रोजगार देने का सवाल अब ऐसा सवाल नहीं रह गया है कि उसे मालिकों की दया पर छोड़ दिया जाए। इस सवाल को मूलभूत मांगों में शामिल करना चाहिए और वह भी इस बात को सुनिश्चित करते हुए कि वैकल्पिक रोजगार ऐसा हो जो मजदूर को उसके पूर्व के रोजगार के तुल्य वेतन और जिम्मेदार पद भी दे सके।

दारू पीने से संबंधित शारीरिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक कारकों व नतीजों को साथ लेते हुए यह समग्र प्रश्न ट्रेड यूनियन चेतना के प्रधान बिंदुओं में से होना चाहिए।

ठेका मजदूर, इस्पात उद्योग के मजदूरों का एक अच्छा-खासा हिस्सा है। ठेका मजदूर व्यावहारिक रूप से इस्पात उद्योग की स्थायी ज़रूरत हैं। इनको स्थायी करने के सवाल की चर्चा अन्यत्र की जाएगी। लेकिन हमें इस सवाल को मौलिक रूप से उठाना चाहिए कि इन ठेका मजदूरों के लिए उचित मकान, स्कूल, चिकित्सा, सफाई, पानी आदि स्वस्थ जीवन हेतु तमाम ज़रूरी सुविधाओं को जुटाने की जिम्मेदारी प्रधान नियोजक (मालिक) की होनी चाहिए, जो यहां स्टील प्लांट मैनेजमेंट और सरकार दोनों हैं।

मजदूर वर्ग समाज परिवर्तन का हिरावल दस्ता है। इसलिए उसकी जिम्मेदारी है कि वह वैकल्पिक तथा अधिक प्रगतिशील सामाजिक प्रणालियों के विकास के लिए खोजबीन और प्रयोग करे। इसमें वैकल्पिक स्वास्थ्य प्रणाली भी शामिल है। इसके साथ-साथ यह भी ज़रूरी है कि मजदूर वर्ग उसके पास आज उपलब्ध संसाधनों और शक्ति पर आधारित वैकल्पिक मॉडलों को खड़ा करने की कोशिश करे। निश्चित ही यह एक बड़ा मसला है। फिर भी यह ऐसा मसला है कि मजदूर वर्ग के सर्वाधिक प्रगतिशील हिस्सों को इस पर ध्यान देना ज़रूरी है तथा इस मसले को तमाम ट्रेड यूनियनों के व्यापक सामाजिक परिप्रेक्ष्य का अंग बनाया जाना चाहिए।

महिला और ट्रेड यूनियन

आज जो 'महिलाओं का सवाल' सामने आया है, वह समाजवादियों के लिए कोई नई बात नहीं है। एंगल्स[21] उन प्रथम व्यक्तियों में से थे जिन्होंने इस सवाल का वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण किया था।

---

[21]मूल आलेख मे एंगल्स के विचारो के संदर्भ मे उनका एक उद्धरण बॉक्स-एक मे जोड़ा गया है। उम्मीद है कि इस उद्धरण से शहीद नियोगी द्वारा किए गए एंगल्स के उल्लेख के ऐतिहासिक महत्व को समझने में मदद मिलेगी।

बॉक्स - एक

''. . . [एकल-विवाह यानी मोनोगैमी प्रथा] परिवार का वह पहला रूप था जो प्राकृतिक नहीं, बल्कि आर्थिक हालात पर आधारित था, यानी मूलतः प्राकृतिक रूप से विकसित सामूहिक मिल्कियत के ऊपर निजी संपत्ति की विजय पर टिकी हुई थी। यूनानी लोग तो खुलेआम स्वीकार करते थे कि एकल-विवाह का एकमात्र उद्देश्य था कि परिवार में पुरुष का शासन रहे और जो बच्चे पैदा हों केवल उसकी अपनी संतान हों व उसकी संपत्ति के उत्तराधिकारी बनें . . . इसलिए [एकल-विवाह] इतिहास में पुरुष व महिला के बीच सुलह के रूप में कदापि नहीं उभरी। उसे पुरुष व महिला के बीच ऐसी किसी सुलह का श्रेष्ठतम रूप समझना तो और भी गलत होगा। इसके विपरीत, यह [एकल-विवाह], एक लिंग द्वारा दूसरे लिंग पर आधिपत्य के रूप में प्रकट होता है - दोनों लिंगों के बीच एक ऐसे अंतर्विरोध के रूप में जिसकी कोई और मिसाल प्रागैतिहासिक काल से आज तक नहीं मिलती . . . संतानोत्पत्ति के लिए पुरुष व महिला के बीच श्रम-विभाजन ही पहला श्रम-विभाजन है . . . इतिहास में पहला वर्ग-प्रतिद्वंद्व एकल-विवाह में पुरुष व महिला के बीच प्रतिद्वंद्व के उभरने के साथ और इतिहास का पहला वर्ग-उत्पीड़न पुरुष द्वारा महिला के उत्पीड़न के साथ प्रकट होता है।''

- **फ्रेडरिक एंगल्स** (1884), 'परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति
प्रोग्रेस पब्लिकेशन, मॉस्को, 1985, अध्याय 2, पृ. 65-66, अंग्रेजी से अनूदित

यह सवाल अब भी एक बहुत ही महत्वपूर्ण सवाल है तथा **समाजवादी आंदोलन के आगे बढ़ने के लिए इसका हल ज़रूरी है।** फिर भी, ट्रेड यूनियनों के तात्कालिक कार्यक्रमों और लक्ष्यों की चर्चा के दौरान इस प्रश्न पर पूरी तरह विचार करना मुश्किल है। आज ज़रूरी यह है कि औद्योगिक वातावरण, इस्पात उद्योग और ट्रेड यूनियनों पर असर डालने वाले महिलाओं से संबंधित मुद्दों को उठाया जाए।

इस संबंध में हम देखते हैं कि चंद क्षेत्रों को छोड़कर, मजदूरों में एवं ट्रेड यूनियन सदस्यता व ट्रेड यूनियन नेतृत्व में महिलाओं का अनुपात बहुत कम है। यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें सचेत रूप से सुधार किया जाना चाहिए। यह तभी किया जा सकता है, जब एक तरफ महिलाओं को अधिकाधिक संख्या में ट्रेड यूनियन के आम संघर्षों में शामिल किया जाए और दूसरी तरफ औद्योगिक महिला मजदूरों की खास महिला-संबंधी समस्याओं को उठाया जाए।

महिलाओं पर विशेष रूप से असर डालनेवाला एक खास महत्वपूर्ण मुद्दा है - **मजदूरों में महिलाओं के अनुपात पर मशीनीकरण का विशिष्ट नकारात्मक प्रभाव**। अगर हम सन् 1905 से चलकर आज तक औद्योगिक मजदूरों में महिलाओं के अनुपात पर ध्यान दें तो देखेंगे कि वह लगातार घटता गया है। जब मशीनीकरण होता है तो करीब हर स्थिति में सबसे पहले महिलाओं का रोजगार छूटता है।

महिलाओं के प्रजनन और बच्चों के पालन-पोषण से संबंधित विशेष कार्यों के बारे में न केवल महिलाओं को, बल्कि तमाम ट्रेड यूनियन आंदोलन को ध्यान देना चाहिए। बच्चों को मां के दूध की जगह कृत्रिम दूध या अन्य दूध पिलाने की बढ़ती हुई आदत विशेष चिंता का कारण है। यह तो बढ़ते हुए क्रम में 'उच्च' प्रकृति की तकनालाजी के उपयोग का ही सीधा नतीजा है कि महिला घर से अधिकाधिक दूर हटती जा रही है। जहां महिलाएं मशीनीकृत उद्योगों में काम कर भी रही हैं, वहां भी वे सर्वाधिक यंत्रवत कामों में लगाई जाती हैं। अतः मशीनीकरण के साथ-साथ जो काम का भार बढ़ता जाता है उससे सबसे अधिक पीड़ित होने वाली महिलाएं ही हैं।

मौजूदा औद्योगिक स्थिति में महिलाओं की समस्याओं में से यहां बहुत कम का ही ज़िक्र किया गया है। जो भी हो, इस बात पर जोर देना ज़रूरी है कि **ट्रेड यूनियनों को इन सवालों को महिलाओं को कोई रियायत देने के उद्देश्य से नहीं**, . . .

(इसके बाद का अंश पांडुलिपि से गायब था। परंतु हमें 'इस्पात ट्रेड यूनियन : नई दिशा की तलाश' शीर्षक वाले भाषण का अंग्रेजी अनुवाद प्राप्त हुआ जिसे नियोगी ने सन् 1983 में जमशेदपुर में आयोजित एक अखिल भारतीय सम्मेलन में प्रस्तुत किया था। उसी अंग्रेजी भाषण का ध्रुव नारायण द्वारा अनूदित अंश जोड़कर हमने इस पांडुलिपि को पूरा किया है। - स.)

. . . . .बल्कि इसलिए उठाना चाहिए चूंकि महिलाओं से संबंधित मुद्दों से जूझना ट्रेड यूनियन आंदोलन के अपने विकास के हित में है।

आज औद्योगिक माहौल में मौजूद वर्गीय उत्पीड़न किस प्रकार खासतौर पर महिलाओं के हितों के खिलाफ है, इसकी ओर विशेष ध्यान देकर ही उत्पादन प्रक्रिया में लगी महिला को एक महिला के रूप में और मजदूर वर्ग की एक सदस्या के रूप में उसकी अपनी भूमिका के प्रति जागरूक बनाया जा सकता है। इसी प्रक्रिया में उन्हें उन तौर-तरीकों के प्रति भी सचेत किया जा सकता है जिनके सहारे यही वर्गीय स्वार्थ उन ताकतों का समर्थन करते हैं जो पुरुषों व महिलाओं के बीच भेदभाव पैदा करती हैं। संपूर्ण मजदूर वर्ग और ट्रेड यूनियन आंदोलन को प्रभावित करने वाले वर्गीय उत्पीड़न के इन दोनों और अन्य रूपों के खिलाफ संघर्ष के ज़रिए ऐसी सच्ची वर्ग-सचेत महिला कार्यकर्त्ता व महिला नेता उभर सकती हैं जो एक नए समाज के निर्माण के लिए ट्रेड यूनियन संघर्ष में पुरुषों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर पूर्ण और समान भागीदार के रूप में अपना यथोचित स्थान ग्रहण करेंगी।

हमारी कार्यशैली

1. हम आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक संघर्षों में पूरी निष्ठा के साथ भाग लेते हैं। हम उत्पीड़न, शोषण और हर प्रकार के गलत कार्यों के खिलाफ स्वतःस्फूर्त संघर्षों में पूरे जुझारूपन के साथ भाग लेते हैं। हम मजदूरों की इच्छाओं के खिलाफ जाकर उनके संघर्षों को अवरुद्ध नहीं करते।
2. हम ट्रेड यूनियन मामलों में नौकरशाही तौर-तरीकों के ज़रिए मजदूर-कार्यकर्त्ताओं के उत्साह को कुंद नहीं करते। हम मजदूरों

के विचारों का दमन करने की नीति की न सिर्फ़ भर्त्सना करते हैं, बल्कि उसके खिलाफ संघर्ष भी करते हैं।

3. हम संघर्ष में विजय के बाद ही दम लेते हैं। हम समझौते की कायर नीति का पूरे जोर-शोर से विरोध करते हैं।
4. हम मोल-तोल के नाम पर, प्रबंधन का पिछलग्गू बन जाने की नीति से घृणा करते हैं।
5. हम मानते हैं कि ट्रेड यूनियन का काम सिर्फ़ आर्थिक लड़ाइयां लड़ना ही नहीं है। इसीलिए हम अर्थवाद के दलदल में नहीं फंसते, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक व दूसरे तमाम रचनात्मक मुद्दों पर बहादुरी के साथ संघर्ष चलाते हैं।
6. सर्वहारा अंतर्राष्ट्रवाद के नाम पर साम्राज्यवादियों का एजेंट बन जाने की नीति से हम नफ़रत करते हैं। हम अपने देश में बुनियादी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक बदलाव लाने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ हैं।
7. अपने देश की विकास प्रक्रिया की विशेषताओं पर ध्यान केंद्रित करते हुए हम पिछड़ी राष्ट्रीयताओं की मुक्ति और जनता की जनवादी, लोकतांत्रिक राज्य व्यवस्था के तहत शोषणमुक्त समाज की स्थापना के प्रति अपनी प्रतिबद्धता जाहिर करते हैं।
8. उत्पादन के क्षेत्र में हम मालिकों की नीतियों का आंख मूंद कर समर्थन नहीं करते, बल्कि ज़रूरत के मुताबिक वैकल्पिक उत्पादन व्यवस्था के प्रसार और उसकी स्थापना के लिए पूरी ताकत के साथ संघर्ष करते हैं।
9. हम महिलाओं व पुरुषों के बीच भेदभाव नहीं करते, बल्कि संघर्ष व उत्पादन प्रक्रिया के ज़रिए महिलाओं को नेतृत्वकारी स्थानों पर लाने का प्रयास करते हैं।
10. हम मजदूर वर्ग के भीतर मौजूद सभी बुराइयों के खिलाफ दोस्ताना संघर्ष चलाते हैं। हम शिक्षा व बहस के ज़रिए इन बुराइयों को दूर करने की कोशिश करते हैं।
11. हमारा देश खेती पर आधारित है। इसलिए हम किसानों की समस्याओं को बहुत तरज़ीह देते हैं। हम किसानों को मजदूर वर्ग का नज़दीकी दोस्त मानते हैं।

12. हम उन कार्यकर्त्ताओं की इज्जत करते हैं जो ईमानदार, बहादुर और सृजनशील हैं। हम दिलोदिमाग से अपने मकसदों की प्राप्ति के प्रति समर्पित हैं। हम कुर्बानियों से घबराते नहीं। शोषकों पर अंतिम विजय तक हम समुद्र की लहरों की तरह एक के बाद एक संघर्षो का तूफान उठाते रहेंगे।■

पीछे छूटते सवाल, उभरती नई परिभाषाएं[22]

- अनिल नौरिया

". . . **छत्तीसगढ़ आंदोलन ने भारत में ट्रेड यूनियन के परांपरागत ढांचे को ही छिन्न-भिन्न कर दिया।** क्षीणकाय और अहम्-आधारित ट्रेड यूनियनों की प्रासंगिकता व कारगरता समाप्त हो चुकी है। उनकी सीमाएं स्पष्ट हैं। **ऐसी ट्रेड यूनियनें जो अपने-आपको पूरे समाज की समस्याओं से काट लेती हैं, जल्दी ही समाज का समर्थन भी खो देती हैं।** मिसाल के तौर पर ट्रेड यूनियन आंदोलन का एक हिस्सा यह नहीं समझ सका कि क्यों अस्सी के दशक की शुरूआत में दिल्ली से 40 कि.मी. से भी कम दूरी पर मोदीनगर की एक बड़ी बुनाई और कताई मिल के मजदूरों ने जब 100 दिनों तक हड़ताल की, तब संचार माध्यमों ने उसकी ओर न के बराबर ध्यान दिया और पूरे समाज में हमदर्दी की शायद ही कोई सुगबुगाहट सुनाई पड़ी। लेकिन जब मात्र सात साल बाद मोदीनगर के पास मेरठ (मलियाना) में मुसलमानों का राज्य-समर्थित कत्लेआम हुआ तो इन ट्रेड यूनियनों ने भी कोई हस्तक्षेप नहीं किया।[23] दरअसल, उसी दौरान जब एक प्रमुख राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन के एक वरिष्ठ पदाधिकारी से संपर्क किया गया तो उन्होंने कहा कि ट्रेड यूनियन कार्यकर्त्ता अगर ऐसे मुद्दे उठाने लगेंगे तो उन्हें ट्रेड यूनियन की गतिविधियों को बंद करना पड़ेगा। यह वही ट्रेड यूनियन थी जो मोदीनगर की हड़ताल से संबंधित थी। वह इन दोनों 'चुप्पियों' के बीच के अंतर्संबंधों को नहीं देख सकी। . . .साफ शब्दों में इसका मतलब यह है कि यदि वे ऐसे मामलों में हस्तक्षेप करेंगे तो उनके सदस्य भाग जाएंगे।

छत्तीसगढ़ के आंदोलनों ने इस मायने में काफी महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल की है। उन्होंने दिखलाया है कि ट्रेड यूनियन आंदोलन जब समाज के संघर्षो व समस्याओं से अपने-आपको जोड़ लेता है, तो लोगों में भी उसके प्रति सहानुभूति पैदा होने लगती है। . . .इसलिए ट्रेड यूनियन गतिविधियों और अन्य वृहत्तर सरोकारों में कोई अंतर्विरोध नहीं है। दोनों एक-दूसरे की मदद करते हैं। . . ."

---

[22]मूल पुस्तक से उद्धरित पृष्ठ संख्या : 550-551

[23]सुप्रीम कोर्ट मे मानवाधिकार मुद्दो पर सक्रिय अधिवक्ता व लेखक।

मजदूर संगठन, समाज परिवर्तन की दिशा में काम करें[24]

1 मई 1991 (मजदूर दिवस), रायपुर से शुरू होनेवाली पत्रिका 'मासिक राष्ट्र बंधु' हेतु हरि ठाकुर द्वारा नियोगी से पत्र-व्यवहार के माध्यम से लिया गया साक्षात्कार। - स.

सवाल - क्या समाज की तमाम समस्याओं से काटकर देश में ट्रेड यूनियनवाद को जीवित रखा जा सकता है?

नियोगी - नहीं! ट्रेड यूनियनें मजदूरों को मौजूदा व्यवस्था में अपने काम की शर्तों और हालातों को बेहतर करने के लिए संगठित करती हैं, लेकिन यह तो समाज के एक तबके के जीवन का एक पहलू मात्र है। अगर मेहनतकशों के जीवन के अलग-अलग पहलुओं की उपेक्षा करके सिर्फ इसी एक पहलू को देखें तो वह ट्रेड यूनियन ज्यादा दूर नहीं जा सकती। वह एक संकुचित और कमजोर आंदोलन बनकर रह जाएगी। उसमें ज़िंदापन खत्म हो जाएगा। अक्सर इस किस्म के संकुचित ट्रेड यूनियन एक समय के बाद मजदूरों के हितों के खिलाफ काम करने लगते हैं।

सवाल - क्या सामाजिक परिवर्तन लाने की दिशा में मजदूर संगठन कोई भूमिका निभा सकते हैं?

नियोगी - मजदूर जो इस व्यवस्था में शोषित-पीड़ित हैं, वे ही अपने जीवन को अपने आंदोलन व अपने संगठन के ज़रिए बेहतर बना सकते हैं। उन पर राज करने वाले उनके खून-पसीने पर जीने वाले तो चाहेंगे ही कि वे हमेशा के लिए उनके गुलाम बन कर रहें। यह व्यवस्था ऐसी बनी हुई है कि यदि मजदूर खुद आंदोलन न करें तो उनकी ज़िंदगी बदतर ही होती जाएगी। इसलिए मजदूर संगठनों का दायित्व बनता है कि वे इस दिशा (समाज परिवर्तन की दिशा) में काम करें और केवल खुद के लिए ही नहीं, बल्कि समाज के सभी शोषितों, पीड़ितों, किसानों और महिलाओं के आंदोलनों को भी मदद दें। उदाहरण के तौर पर,

---

[24]मूल पुस्तक से उद्धरित पृष्ठ संख्या : 326-327.

छत्तीसगढ़ में बाहरी लुटेरों के द्वारा यहां की जनता को लूटने की जो व्यवस्था बनी हुई है, उसके खिलाफ आंदोलन खड़ा करने में छत्तीसगढ़ माईन्स श्रमिक संघ (सी.एम.एस.एस.) ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

सवाल - क्या सामाजिक, राजनीतिक, प्रशासनिक बुराइयों, कुरीतियों, विडम्बनाओं और विरोधाभासों से लड़ने के लिए मजदूर संगठनों की कोई भूमिका हो सकती है?

नियोगी - इस सवाल का जवाब भी हमारे सी.एम.एस.एस. के काम में ही आपको मिलेगा। शराबखोरी, जुआखोरी, महिलाओं की प्रताड़ना, दहेज, भ्रष्टाचार जैसी कई सामाजिक बुराइयों पर जनता की पहलकदमी और सक्रिय कार्रवाई द्वारा हमला बोलने का काम हमारी ट्रेड यूनियन ने किया है।

सवाल - धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रीय एकता, प्रजातांत्रिक मूल्यों तथा अधिकारों की रक्षा जैसे मुद्दों से क्या मजदूर संगठनों को तटस्थ रहना चाहिए?

नियोगी - इन सभी सवालों पर मजदूर वर्ग का अपना सोच है जो शासक वर्ग के सोच से बिल्कुल भिन्न है। और उसी सोच के अनुसार हम सक्रिय रहे हैं। हम मेहनतकशों की ज़िंदगी से संबंध रखने वाले किसी भी सवाल पर तटस्थ रहने की बात को नकारते हैं। हम उस धर्मनिरपेक्षता के पक्ष में हैं जो मजदूरों और गरीबों के आपस में लड़ने के खिलाफ हैं, और आपसी सम्मान के आधार पर सभी धर्मों के लोगों के मानवीय रिश्तों को मजबूत करती है। राष्ट्रीय एकता का आधार है जनता। इस व्यवस्था में, बहुसंख्यक शोषित-पीड़ित जनता और हमारे लिए राष्ट्रीय एकता वह है जो जनता के हित में काम करे। उसकी आकांक्षाओं, उसकी भाषा, संस्कृति जीवन शैली वगैरह को न दबाए। इसलिए हमने छत्तीसगढ़ की मुक्ति के लिए ऐसे मुद्दे उठाए हैं, जो क्षेत्र की जनता की एकता और विकास का आधार बन सकें। प्रजातांत्रिक मूल्यों और जनवादी अधिकारों की लड़ाई तो मजदूर संगठनों के लिए बहुत महत्व रखती है, क्योंकि इस व्यवस्था में प्रजातांत्रिक मूल्यों को शासक वर्ग व पूंजीपतियों द्वारा लगातार कुचला जाता रहा है। गरीबों

की अपने जीवन को बेहतर बनाने की कोशिशों को दबाया जाता रहा है। भिलाई में आज औद्योगिक क्षेत्र में चल रही लड़ाई इस बात का उदाहरण है। इज्जत से जीने के लिए, एक खुशहाल जीवन की दिशा में जाने के लिए, जनवादी अधिकारों के लिए लड़ना मजदूर संगठनों के लिए अनिवार्य हो जाता है।■

छत्तीसगढ़ के मजदूरों के पास नेतृत्व की कमी नहीं[25]

नियोगी से 12 सितंबर 1991 को दिल्ली में पत्रकार अनिल शुक्ल ने लंबी बातचीत की थी। इस बातचीत का मूल पाठ यहां प्रस्तुत है।

- स.

सवाल - दल्ली राजहरा में लगभग पंद्रह वर्षों तक काम करने के बाद आपने भिलाई क्षेत्र को आधार बनाने के लिए क्यों चुना?

नियोगी - दरअसल, दल्ली राजहरा जाने से पहले मैं भिलाई इस्पात संयंत्र में नौकरी करता था और वहीं के कर्मचारियों और तकनीशियनों के साथ मिलकर ट्रेड यूनियन में भी सक्रिय था। इस दौरान मुझे लगातार यह महसूस हो रहा था कि मैं मूल काम नहीं कर पा रहा हूं। मूल काम से मेरा अभिप्राय मजदूरों को संगठित करने से है। इसी बीच नक्सलबाड़ी आंदोलन के प्रति मैं आकर्षित हुआ और तब नक्सली समझ के मुताबिक मैं भी यही मानने लग गया था कि ट्रेड यूनियन संगठन केवल पूंजीवादी फ्रेम में ही काम कर सकते हैं, वही उनकी सीमा रेखा है। लिहाजा, आपात्काल से ठीक पहले मैं इस्पात संयंत्र छोड़कर छत्तीसगढ़ के ग्रामीण श्रमिकों और किसानों को संगठित करने की नीयत से काम करने लगा और आप जानते ही हैं कि इसके लिए मैंने दल्ली राजहरा क्षेत्र को चुना। तेरह-चौदह बरसों की मेहनत के बाद वहां स्थानीय स्तर पर एक सुदृढ़, जुझारू और विवेकवान नेतृत्व विकसित हो गया जिससे वहां के स्तर पर मेरा काम हल्का हो गया। तब मैंने भिलाई औद्योगिक क्षेत्र में जमने और वहां नए तरीके का श्रमिक आंदोलन

---

[25]मूल पुस्तक से उद्धरित पृष्ठ संख्या : 329-336.

विकसित करने का फैसला किया, क्योंकि वहा ज्यादातर श्रमिक या तो असंगठित थे या फिर दकियानूसी अथवा गैर-ईमानदार मंशाओं वाले नेतृत्व के साथ थे।

सवाल - क्या इस बार ट्रेड यूनियन के संदर्भ में 'पूंजीवादी फ्रेम' की अवधारणा आड़े नहीं आई?

नियोगी – नहीं. . . (क्षणिक विराम) यह अवधारणा तो अस्सी का दशक शुरू होने के पहले ही बदल चुकी थी और इस बारे में मेरी स्पष्ट राय कायम हो चुकी थी कि न केवल ग्रामीण श्रमिकों, बल्कि आधुनिक उद्योगों के श्रमिकों को संगठित किए बिना, इस देश की किसी भी समस्या से निबटा नहीं जा सकता है।

सत्तर और अस्सी के दशक के भारत की तुलना आप चीन सरीखे उस देश से कैसे कर सकते हैं जहां बीस या तीस के दशक में न तो औद्योगिक केंद्र थे, न औद्योगिक श्रमिकों की बहुतायत, न संचार के अत्याधुनिक साधन और न ही केंद्रीकृत अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित सेना। आप यदि शहरों या वहां के श्रमिकों को भूलकर केवल गांव की बात करेंगे तो वस्तुतः एक एकांगी समझ ही साबित होगी। इसलिए ट्रेड यूनियन आंदोलन को 'पूंजीवादी फ्रेम' का आंदोलन भर मानने और उससे पल्लू झाड़ लेने की मेरी समझ अस्सी का दशक शुरू होते ही बदल चुकी थी। भिलाई-दुर्ग का औद्योगिक क्षेत्र चूंकि इस दिशा में महाक्षेत्र है, लिहाजा तकरीबन दो साल पहले मैंने भिलाई में काम शुरू किया।

सवाल - यहां काम शुरू करते समय आपको किस प्रकार की दिक्कतों का सामना करना पड़ा?

नियोगी - शुरू में क्या, अभी भी दिक्कतें ही दिक्कतें हैं, दिक्कतें तो हमेशा होती हैं। चूंकि भिलाई और दुर्ग में बड़े-बड़े उद्योग समूह हैं और ये संख्या में भी काफी हैं, लिहाजा आपसी बाजार प्रतिद्वंद्विता होने के बावजूद श्रमिकों के मामलों को लेकर उनके बीच बड़ी एकता है। हम लोगों का काम शुरू होने से पहले यहां इंटक (इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस) और एटक (ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस) की

यूनियनें थीं। लेकिन वे संगठित और जुझारू तो नहीं ही थीं, साथ ही इस क्षेत्र की समस्याओं की जो अपनी विशिष्टताएं हैं, उनके बारे में उनकी न तो कोई समझ थी और न ही विश्लेषण। वे औद्योगिक समूहों की गुंडागर्दी और आतंक के प्रति तो जागरूक थे (जाहिर है कि उसके पूरे दबाव में रहकर ही वे कार्यरत थे), लेकिन (जाने या अनजाने) यह सोचने-समझने को तैयार नहीं थे कि पूंजीपतियों की एकताबद्ध गुंडागर्दी का मुकाबला करने के लिए यहां की श्रमिक शक्ति पूरे तौर पर सक्षम हो सकती है, बशर्ते कि उनके बीच जुझारू एकता कायम करवाई जाए। इस समझ के अभाव में उनकी भूमिका एक दबाव गुट के बजाय याचक की ज्यादा होती थी जो अपने झंडे तले इकट्ठा मजदूरों से चंदा बटोरने में तो बड़े सख्त थे लेकिन उद्योग समूहों को मांग पत्र देने में बड़े लचीले (मुस्कराहट)। इसलिए श्रमिकों को लगातार अपने अधिकारों से वंचित रहना पड़ता था।

इस पूरे क्षेत्र में हम लोगों की छवि एक जुझारू संगठन की बन चुकी थी। इसलिए हमें पता था कि यहां काम शुरू करते ही हम पर हमले शुरू हो जाएंगे। इसलिए लगभग डेढ़ साल तक हमने अपना काम और संगठन गुप्त और भूमिगत रखा। हमें पता था कि यहां का उद्योगपति कितना खूंखार है। लिहाजा हमने अलग-अलग औद्योगिक इकाइयों में लोगों को व्यक्तिगत रूप से लेकर संगठित करना शुरू किया। चूंकि भिलाई और दुर्ग का अधिकांश श्रमिक निकटवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों से आता है, जहां छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा (छमुमो) का काम पहले से ही था, अतः हमने अपने ग्रामीण संपर्कों को इन श्रमिकों को संगठित करने का काम सौंपा। यदि आप भारत के श्रमिक आंदोलन के इतिहास को देखें तो यह एक प्रकार का नया प्रयोग लगेगा जहां शहरी श्रमिकों को संगठित करने का प्रारंभिक काम शहरों से शुरू न होकर गांवों से शुरू हुआ। आप इसे 'प्रयोग' मानें या हमारी 'मजबूरी'। बहरहाल, इस नए प्रकार की सोची-समझी रणनीति को आधार बनाकर संगठन की शुरूआत का सिलसिला बड़ी दिलचस्प प्रक्रिया थी जिसके परिणाम बेहद सकारात्मक निकले। संगठन बनाने और उसके व्यापक विस्तार की यह भूमिगत और गुप्त प्रक्रिया पिछले वर्ष के पूर्वार्द्ध तक चलती रही। पिछले अक्तूबर में ही

हमने अपने काम और संगठन को बाकायदा खुला रूप दिया और खुलकर इसका ऐलान किया।

सवाल - आपके खुले ऐलान की क्या प्रतिक्रिया हुई?

नियोगी - हुबहू वही, जिसकी हमने कल्पना की थी। भिलाई और आसपास के क्षेत्रों के उद्योगपतियों ने निरंतर बैठकें कीं और तय किया कि चाहे जो भी कीमत चुकानी पड़े, नियोगी और उनके लोगों को यहां घुसने नहीं देना है। उन्होंने न सिर्फ पुलिस और प्रशासन के पास जाकर अपना रोना रोया बल्कि यहां कार्यरत पुरानी ट्रेड यूनियनों के नेताओं की पूछ अचानक बढ़ गई। उद्योगपतियों ने उन्हें 'समझाया' कि यदि नियोगी यहां जम गया, तो हमारा नुकसान होना है वह तो होगा ही पर साथ ही तुम्हारा संगठन भी खत्म हो जाएगा।

जिन फैक्ट्रियों में श्रमिकों ने छमुमो से सम्बद्ध यूनियनों के साथ संबंधित होने का ऐलान किया, उन्हें धमकाया गया, प्रताड़ित किया गया और बहुतों को नौकरी से हटाने की कोशिशें भी की गईं (कुछ को हटाया भी)। हमारे विरुद्ध उद्योगपतियों का पहला ही हमला पूरी ताकत से किया गया था। दरअसल, वे लोग इस समय भिलाई में हमारा प्रवेश मान रहे थे, जिसे वे पूरी ताकत से 'खारिज' कर देना चाहते थे। उन्हें यह मालूम नहीं था कि भिलाई में हमारा प्रवेश तो डेढ़ साल पहले ही हो चुका है, यह समय तो हमारे ऐलान मात्र का है। लिहाजा अपनी पूरी ताकत का इस्तेमाल करने के बावजूद वे हमें उखाड़ नहीं सके। यह हमारी रणनीति की विजय थी और उनकी रणनीति की पराजय।

सवाल - भिलाई में आपको किस तरह की श्रमिक समस्याएं मुख्य रूप से दिखाई दीं?

नियोगी - देखिए, शोषण तो यहां बहुत गंभीर रूप में मौजूद था। भिलाई, दुर्ग, उरला, सभी जगह स्थायी चरित्र वाले उद्योग होने के बावजूद वहां ठेकेदारी प्रथा का ही बोलबाला था। श्रमिकों के स्थायीकरण की चिंता उद्योगपतियों को नहीं थी। पूर्व में कार्यरत श्रमिक संगठन और

श्रम विभाग के अधिकारी भी यह भूल चुके थे कि देश में 'ठेकेदारी प्रथा उन्मूलन अधिनियम' नाम का कोई कानून भी है। परिणामस्वरूप ठेकेदारी के नाम पर न तो जीवनयापन लायक वेतनमान के बाबत कोई पूछनेवाला था और न ही काम की समय-सीमा की किसी को परवाह थी। जो लोग भिलाई के औद्योगिक 'व्याकरण' से परिचित नहीं हैं, उनके लिए यह कल्पना कर पाना नामुमकिन है कि ऐसी जगह जहां देश का सर्वाधिक प्रतिष्ठित सरकारी इस्पात संयंत्र हो (जहां प्रत्येक श्रमिक कानूनों और सुविधाओं का पालन होता है), वहीं उससे जुड़े निजी उद्योगों में अठारहवीं शताब्दी के यूरोप की बर्बर औद्योगिक परंपराएं चलती हैं।

दूसरे, यहां औद्योगिक दुर्घटनाओं की दर काफी ज्यादा थी। कोई महीना ऐसा नहीं होता था जब काम के दौरान दुर्घटनाओं की चपेट में एक-दो श्रमिकों की जान न जाती हो। जहां तक घायलों की संख्या का ताल्लुक है, छह से दस तक हर महीने का औसत है और उद्योगपति हर मामले को श्रम विभाग तथा पुलिस के साथ मिल-जुलकर रफा-दफा कर देते थे। इस सब को रोकना, उपयुक्त सुरक्षा उपायों की व्यवस्था करना और फिर भी दुर्घटना हो जाए तो उचित मुआवजे का प्रबंध करना - ये सारे फौरी काम हमारे सामने थे।

सवाल - आपकी गिनती मोटे तौर पर मार्क्सवादी नेता के रूप में की जाती है। फिर पहले दल्ली राजहरा में और अब दुर्ग में मद्यनिषेध आंदोलन के पीछे आपकी क्या मंशा थी?

नियोगी - श्रमिक पहले ही निर्धनता, हताशा और दुःख का शिकार होता है। ऐसे में शराब का सेवन न सिर्फ उसे और अधिक निर्धन बनाता है, बल्कि संगठन बनाने और संगठित होने में सर्वाधिक आड़े यही शराब आती है। इसलिए शराब का छुड़वाया जाना, उनके बीच काम करने की सबसे पहली शर्त होती है। दूसरे, इस आंदोलन में महिलाओं और बच्चों को शामिल करने का महत्वपूर्ण काम भी आसानी से होता है क्योंकि आखिरकार श्रमिकों की शराबखोरी का सर्वाधिक शिकार तो महिलाओं और बच्चों को ही होना पड़ता है। मद्यनिषेध आंदोलन अपने-आप

महिलाओं और बच्चों के व्यापक संगठन में बदल जाता है और बाद में इस संगठन में सामाजिक और आर्थिक जागरूकता के विचार-तत्वों को लाने की प्रक्रिया सहज और स्वाभाविक हो जाती है।

दूसरी बात जो आपने पूछी, वह बिल्कुल सही है। भारत के साम्यवादियों ने कभी भी मद्यनिषेध को कोई 'मसला' नहीं माना। जहां तक मेरा ताल्लुक है, यह एकदम सही है कि मार्क्सवाद इस बारे में मेरी कोई सहायता नहीं कर सका। . . . (क्षणिक विराम)। देखिए, भारतीय साम्यवादियों के साथ कुछ तो बड़ी अजीब दिक्कतें रही हैं. . .भारत की अपनी परिस्थितियों में मार्क्सवाद को लागू करने के बारे में उन्होंने कोई स्वतंत्र सोच ही नहीं किया. . .अब यही मद्यनिषेध का 'मसला' लें। चूंकि मार्क्सवाद यूरोप से चला और चूंकि यूरोप की भौगोलिक परिस्थितियों में शराब आपत्तिजनक नहीं थी और चूंकि यूरोप के मार्क्सवादियों शराबबंदी का कोई आह्वान नहीं दिया, इसलिए हमारे देश के साम्यवादियों ने भी इसे कोई 'मसला' नहीं माना। मेरे लिए यह एक 'मसला' था। भारतीय साम्यवादी इस मामले में मेरी कोई मदद नहीं कर पा रहे थे। दूसरी तरफ, मेरी मदद को गांधी (वाद) थे और मैंने उन्हें ही पढ़कर सहायता ग्रहण की।

सवाल - आपके शराबबंदी आंदोलन और गांधीवादियों के मद्यनिषेध में क्या आप कोई फर्क करते हैं?

नियोगी - दोनों की मंशा और उद्देश्य तो एक ही हैं। लेकिन हम लोग इस मामले को लेकर लगातार आंदोलन चलाते रहे और व्यवहार में उसे लागू भी कराते रहे। जहां तक गांधीवादियों का सवाल है, मद्यनिषेध उनके लिए एक स्टीरियोटाइप (लकीर के फकीर की तरह) कार्यक्रम है। कैसेट बजा देने से कुछ नहीं होता। इसके अलावा मद्यनिषेध हमारे लिए मूल आंदोलन नहीं है। यह एक सहायक आंदोलन है - मूल आंदोलन को मदद पहुंचाने के लिए, जबकि गांधीवादियों का जो हिस्सा इसे संचालित करता है, उसके लिए यह अपने-आप में एक मूल आंदोलन है। यही वजह है कि हमारे लिए यह एक कामयाब आंदोलन है, जबकि उनके लिए नाकामयाब।

सवाल - आपने अभी महिलाओं के बीच संगठन की आवश्यकता की बात कही है। महानगरों और बड़े शहरों में ही नारीवादी (फेमनिस्ट) आंदोलनों की बात पिछले एक-डेढ़ दशक में खूब जोर-शोर से चली है। आप इन दो प्रकार के आंदोलनों (या संगठनों) में क्या अंतर या समानता पाते हैं?

नियोगी - (लंबी चुप्पी). . .आपने बहुत आवश्यक सवाल पूछा है। इन दोनों प्रकार के आंदोलनों में अवश्य ही कुछ सममानताएं हैं जिन पर मैं बाद में बात करूंगा, पहले अंतर की बात की जाए। बड़े शहरों में चलने वाले जिन नारीवादी आंदोलनों का आपने ज़िक्र किया है, उनके नेतृत्व में प्रायः उच्च मध्यमवर्गीय महिलाएं होती हैं। इनका सोच और कार्यक्षेत्र आमतौर पर उच्च मध्यमवर्ग या ज्यादा-से-ज्यादा मध्यमवर्ग की महिलाओं की समस्याओं के एक पक्ष तक सीमित होता है। फिर भी इन संगठनों ने दहेज हत्याओं, दहेज उत्पीड़न या किन्हीं मामलों में महिलाओं को न्यायालय में न्याय दिलाने के क्षेत्र में प्रशंसनीय भूमिका अदा की है। लेकिन इन संगठनों या इनके नेतृत्व की सबसे बड़ी कमी यह रही है कि ये महिला समस्याओं को सारे समाज की मूलभूत समस्याओं से अलग-थलग काटकर देखते हैं। यह सच है कि शताब्दियों से विश्व के अधिकतर हिस्सों में पुरुष-प्रभुत्व का विचार ही हावी रहा है, लेकिन जिस समाज का आधार ही सामाजिक और आर्थिक शोषण पर टिका हो, वहां शोषण के अलग-अलग रूपों को लेकर आप अलग-अलग लड़ाई लड़ेंगे, तब तो समाज बदलने से रहा। यह तो सबकी एकजुटता और मिली-जुली लड़ाई से ही संभव होगा। फिर पुरुषप्रधान सत्ता से मुक्ति के लिए ज़रूरी है कि महिलाएं उत्पादन की प्रक्रिया में बराबर की हकदार बनें और वह भी बराबरी के वेतन पर। मजेदार बात यह है कि उत्पादन की प्रक्रिया में सर्वाधिक भागीदारी श्रमिक वर्ग की महिलाओं की होती है, उसकी तुलना में बहुत कम मध्यमवर्ग की और न के बराबर उच्च मध्यमवर्ग की। पर दुर्भाग्य से इस प्रकार के अधिकतर संगठनों के सोच और कार्यक्षेत्र की प्राथमिकता इस क्रम के ठीक उलट होती है। उधर पुरुषप्रधान सत्ता के विरोध की अधकचरी समझ के कहीं-कहीं ऐसे

हास्यास्पद नतीजे दिखते हैं कि लगता है लड़ाई पुरुषप्रधान सत्ता के खिलाफ न होकर, हर पुरुष के ही खिलाफ लड़ी जा रही हो।

सवाल - इसे जरा स्पष्ट करेंगे?

नियोगी - अब आप जरा छत्तीसगढ़ महिला मुक्ति मोर्चा और उसके नेतृत्व की महिलाओं के सोच और कार्यक्षेत्र को लीजिए। दल्ली राजहरा में आज कोई भी श्रमिक अपनी पत्नी को पीट नहीं सकता। कोई ठेकेदार या सुपरवाईज़र किसी महिला श्रमिक के शारीरिक शोषण की कल्पना भी नहीं कर सकता। लेकिन पुरुषों के विरुद्ध किसी भी घृणा का कोई माहौल नहीं है। चाहे दल्ली राजहरा की खदान हो या भिलाई के उद्योग, महिला और पुरुष साथ मिलकर मजदूरी करते हैं और मिलकर संघर्ष भी करते हैं। 'महिला मोर्चा' इस सबके साथ-साथ महिलाओं की विशिष्ट समस्याओं के प्रति उन्हें जागरूक करता है और लड़ना सिखाता है। उधर हमारे संगठन में शहरों की पढ़ी-लिखी कई महिला साथी कार्यरत हैं लेकिन महिला समस्याओं के बारे में वे भी एकांगी होकर नहीं, बल्कि समग्रता से सोचती हैं, कार्य करती हैं।

सवाल - आपका छमुमो या जिस तरह से आप इस क्षेत्र में लगातार सीमित होते जा रहे हैं, तो क्या भविष्य में भी आपका इरादा छत्तीसगढ़ तक ही सीमित रहने का है?

नियोगी - यह मुझे समझ में नहीं आता कि आप क्वालिटी (गुणवत्ता) चाहते हैं या क्वांटिटी (संख्या)। यदि आप क्वालिटी चाहते हैं तो आपको कहीं-न-कहीं लोकलाइज़्ड (स्थानीकृत) होना पड़ेगा। फिर जो लोग अलग-अलग हिस्सों में काम करते हैं, आप उनके बीच में आगे चलकर एकता बना सकते हैं। पहले अलग-अलग मॉडल बनने दीजिए और मॉडल तो एक छोटे क्षेत्र से ही शुरू हो सकता है। . . .

सवाल - आपको कभी 'सुधारवादी कम्युनिस्ट', कभी 'अहिंसावादी कम्युनिस्ट' और कभी 'गांधीवादी ट्रेड यूनियन नेता' के नाम से पुकारा जाता है। 'हिंसा' और 'अहिंसा' के बारे में आपकी वास्तव में अवधारणा क्या है? क्या आप इसे स्पष्ट करेंगे?

नियोगी - 'हिंसा' या 'अहिंसा' - यह तो माध्यम होता है, लक्ष्य नहीं। सवाल लक्ष्य का है, वह यदि स्पष्ट हो तो माध्यम के बारे में भ्रम की स्थिति नहीं बनती। यह सही है कि छमुमो का पिछले पंद्रह-सोलह वर्षों का आंदोलन मोटे तौर पर एक अहिंसक आंदोलन रहा है। इस आधार पर यदि मुझे या मोर्चे को अहिंसक कहा जाए तो यह आधारहीन संबोधन नहीं होगा। लेकिन इससे ज्यादा महत्वपूर्ण सवाल यह है कि मोर्चे का या मेरा अंतिम लक्ष्य क्या है।

मुझ सहित मोर्चे के तमाम नेतृत्वकारी साथियों की यह समझ है कि इस देश की तमाम समस्याओं का निदान है जनवादी क्रांति। स्वाभाविक है कि यह जनवादी क्रांति अकेले छत्तीसगढ़ तक तो सीमित होगी नहीं। देशभर में इसके लिए व्यापक और परिपक्व जनवादी आंदोलन चलाने होंगे। जब यह आंदोलन अपने चरम बिंदु पर होंगे, तब उस समय की परिस्थितियों से यह तय हो जाएगा कि क्रांति करने के लिए हिंसा की ज़रूरत है या नहीं, है तो कितनी और कैसे? आंदोलन को देशव्यापी स्तर पर विकसित करने और व्यापक बनाने के पहले ही आप हथियार तानना शुरू कर देंगे, तब तो सारा कुछ 'फिस्स' हो जाएगा। नेतृत्व का काम है कि वह जनवादी तौर-तरीकों से आंदोलन को शिखर तक पहुंचाए और फिर जनता को स्वयं महसूस होने दे कि परिवर्तन हथियार के बिना संभव है या हथियार की मदद से। 'हिंसा' या 'अहिंसा' की मोर्चे या मेरी अवधारणा को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए।. . .

सवाल - जिस तरह का मॉडल आप छत्तीसगढ़ में बना रहे हैं, क्या अपने बाद के लिए आपने नेतृत्व की दूसरी कतार भी अभी तैयार की है? लोग जानना चाहेंगे कि नियोगी के बाद कौन?

नियोगी - मेरा मानना है कि दूसरी कतार हमेशा दूसरी पीढ़ी की होती है। कल को मैं नहीं रहूंगा, हमारे दूसरे साथी नहीं रहेंगे, तो नई पौध आएगी। प्रकृति का यही नियम है। छत्तीसगढ़ के मजदूरों के पास नेतृत्व की कमी नहीं। हमारे बाद दूसरी पीढ़ी हम लोगों का स्थान स्वयं ही ले लेगी। इसलिए यह ऐसा कोई दिक्कत-तलब या गंभीर मसला नहीं है।■

लाल-हरा झंडा इतिहास के कदमों पर[26]

सन् 1983-84 में राजनांदगांव की बी. एन. सी. मिल्स के मजदूरों ने छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा (छमुमो) के लाल-हरे झंडे के तले 'राजनांदगांव कपडा मिल मजदूर संघ' नामक यूनियन का गठन किया। इसके नेतृत्व में मजदूरों ने मानवीय कार्य-परिस्थितियों और श्रम कानूनों के तहत उपलब्ध सुविधाओं के लिए जुझारू संघर्ष किया। दल्ली राजहरा के खदान मजदूरों ने इस संघर्ष को सक्रिय समर्थन दिया। खदान मजदूरों की एक सभा में अपनी गिरफ्तारी के पूर्व नियोगी द्वारा 28 अगस्त 1984 को दिया गया भाषण नीचे प्रस्तुत है। खदान मजदूरों के शिक्षण की दृष्टि से नियोगी ने जिस तरह राजनांदगांव में मजदूर संघर्ष का इतिहास तराशा है वह जनशिक्षण के बारे में उनकी गहरी समझ की मिसाल है।

- स.

बी.एन.सी. मिल्स (बंगाल-नागपुर कॉटन मिल्स, राजनांदगांव) के दो माह के आंदोलन के अंदर पूंजीपति वर्ग और प्रशासन ने इस बात को महसूस किया है कि लाल-हरे झंडे की राजनीति केवल खदान मजदूरों की राजनीति नहीं, केवल किसान वर्ग और आदिवासियों की ही राजनीति नहीं है, बल्कि तमाम मेहनतकश वर्ग की राजनीति है। सारी दुनिया की दौलत मजदूर और किसान के खून, आंसू और पसीने से पैदा हुई है। लेकिन इस पर एक सफेदपोश लुटेरे वर्ग ने कब्जा कर लिया है। मजदूर वर्ग जन आंदोलन और संघर्ष के ज़रिए ही इसको पा सकता है।

कब और कैसे?

बी.एन.सी. मिल कब बना, कैसे बना, इसके साथ छत्तीसगढ़ के इतिहास का क्या संबंध है, इसको समझना ज़रूरी है। करीब सौ साल पहले बी.एन.सी. मिल का निर्माण हुआ। उस समय अंग्रेजों का राज था, और मिल रियासत के अधीन थी। अंग्रेजों ने सबसे पहले रेल्वे का विकास किया। जिसे बंगाल-नागपुर रेल्वे (बी.एन.आर.) बोलते थे। इससे एक ओर छत्तीसगढ़ी जनता के लिए दूर देश जाने का रास्ता बना। पर दूसरी

---

[26]मूल पुस्तक से उद्धरित पृष्ठ संख्या : 275-280

ओर शोषण का भी एक बड़ा रास्ता बना। मेहनतकश छत्तीसगढ़ी मजदूरों का यहां से निर्यात हुआ - कोयला खदानों में, चाय बागानों में, मिट्टी कटाई के काम में और दूर-दराज देश भर के ईंट भट्टों में। अंग्रेजों ने रायपुर से धमतरी तक एक छोटी रेल लाइन और बिछाई। कांग्रेस के जमाने में कितनी रेल लाइन बनीं? एक बैलाडीला से वाल्टेयर तक, जिससे जापान हिंदुस्तान का एक नंबर क्वालिटी का लोहा पत्थर कौड़ियों के मोल खरीद सके। दूसरी रेल्वे लाइन दल्ली राजहरा और दुर्ग के बीच खींची, जिससे भिलाई कारखाने की खुराक पूरी हो। इससे स्थानीय जनता का न तो विकास हुआ और न ही जनता को कुछ सुविधा मिली।

आज से सौ साल पहले जब अकाल पड़ा था। तब अंग्रेजों ने आपासी (सिंचाई) के लिए तांदुला नहर बनाई। धमतरी में रुद्री का बांध गंगरेल भी तभी बना। अंग्रेजों ने इतना तो जनता के लिए किया। परंतु कांग्रेस के समय में खरखरा, गोंदली जो भी छोटे-छोटे बांध बनाए गए, उन सबका पानी भिलाई और कोरबा हड़प कर रहा है और किसानों का सत्यानाश कर रहा है। छत्तीसगढ़ के जंगल और आदिवासियों को उजाड़ कर लोहा कारखाना बनाया। जंगल कटने से जंगल के ठेकेदार तो पनपे पर बारिश कम हो गई। इसलिए हर तीन-चार साल में एक बार अकाल अब छत्तीसगढ़ के इतिहास के साथ जुड़ गया है। आज यहां कारखानों में केवल नौ प्रतिशत मजदूर छत्तीसगढ़ी हैं, बाकी बाहरी हैं जिनकी छत्तीसगढ़ के विकास में कोई रुचि नहीं है। तब दुर्ग, रायपुर छोटे शहर थे। अब यहां लकड़ी ठेकेदार, गल्ला ठेकेदार, मिट्टी ठेकेदार और पूंजीपतियों के महल और बंगले बन गए हैं।

अंग्रेजों ने छत्तीसगढ़ की काली मिट्टी यानी कन्हार मिट्टी में कपास उगाने की कोशिश की, जिससे किसान को एक नकदी फसल मिल जाए और सिर्फ धान पर उसकी निर्भरता कम हो जाए। किसान कपास पैदा करेगा और उस रूई से बी.एन.सी. मिल में कपड़ा बनेगा। पर मालगुजार और सामंत नहीं चाहते थे कि यहां पर कृषि का विकास हो और किसानों की तरक्की हो। अंग्रेजों को कपास उगाने का इरादा छोड़ना पड़ा। इसलिए

बी.एन.सी. मिल के लिए रूई का आयात महाराष्ट्र और गुजरात से हुआ। इससे किसानों को लाभ नहीं हुआ।

सबसे अगुआ मजदूर

बी.एन.सी. मिल के मजदूरों ने मालगुजारों और अंग्रेजों दोनों के खिलाफ शुरू से ही लड़ाई में अगुआई की। बी.एन.सी. मिल के मजदूरों ने आज से 80 साल पहले 'रौलेट एक्ट' के खिलाफ ऐतिहासिक लड़ाई लड़ी। अंग्रेज शासन का रौलेट एक्ट, आज के कांग्रेसी शासन में रासुका (राष्ट्रीय सुरक्षा कानून) के काले कानून जैसा था। सन् 1908 में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ने वाले बाल गंगाधर तिलक की गिरफ्तारी पर बी.एन.सी. मिल के मजदूरों ने हड़ताल की थी। मजदूरों ने एक के बाद एक संघर्ष कर राजा के दांत खट्टे कर दिए और अंग्रेजों की नींद हराम कर दी थी। छत्तीसगढ़ के इस सबसे पुराने उद्योग के मजदूर अंग्रेज साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ाई में हमेशा आगे रहे।

बी.एन.सी. मिल का आंदोलन तब तेज हुआ जब उसका नेतृत्व ठाकुर प्यारेलाल सिंह ने संभाला। छत्तीसगढ़ के मजदूर आंदोलन में उनका नाम सबसे ऊपर है। सबसे पहले सन् 1923 में ठा. प्यारेलाल सिंह के नेतृत्व में छह माह तक हड़ताल चलाने वाले मजदूरों पर गोली चली थी, जिसमें जरहू गोंड नाम का श्रमिक मारा गया। यह भारत के मजदूर आंदोलन का पहला शहीद माना जाता है। ठाकुर साहब के नाम से अंग्रेज कांपते थे। जबलपुर में लोगों का आज भी कहना है कि ठाकुर प्यारेलाल सिंह को कांग्रेसी सरकार ने जहर देकर मरवा डाला और उनको नर्मदा में डाल दिया।

ठाकुर साहब को अंग्रेजों ने जिला बदर कर दिया और उनके राजनांदगांव की रियासत में प्रवेश पर पाबंदी लगा दी। तब प्यारेलाल सिंह ने चिट्ठी भेजकर नागपुर से कामरेड रूईकर को बुलवाया। रूईकर के आने के बाद आंदोलन इतना तेज हुआ कि पहली बार 23 दिन और दूसरी बार 65 दिन की हड़ताल हुई। कामरेड रूईकर पर कई बार जानलेवा हमले हुए। उनको बोरे में बंद कर बाघ नदी की पुलिया में डाल दिया गया। उनकी हड्डी टूट गई। कुछ केवट लोगों ने उन्हें

बमुश्किल बचाया। कामरेड रूईकर के दिल में एक नए समाज का सपना था। पर अफसोस, जो पौधा उन्होंने इतने श्रम से लगाया, उसे आजादी के बाद कोई रोशनी, हवा, पानी नहीं मिला। उनके चेले चुनावी दलदल में फंसकर लाइसेंस-कोटे की राजनीति करने लगे।

इंटक (इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस) की दलाली

इस तरह वहां धीरे-धीरे सोशलिस्ट पार्टी की नींव कमजोर होने लगी। उसी समय प्रकाश राय पहली बार राजनांदगांव आए। वह बीड़ी मजदूरों में काम करते रहे पर कभी भी बी.एन.सी. मिल के अंदर नहीं घुस सके। फिर प्रकाश राय के चेले वहां ठेकेदारों से मिल कर छानने-घोटने लगे। अब कांग्रेसी राज्य होने के कारण वहां पर इंटक ही मान्यता-प्राप्त यूनियन है। इंटक के वहां पर दो भाई हैं, दोनों वकील। बड़ा भाई खजान सिंह खनूजा मैनेजमेंट का वकील। छोटा भाई बलबीर खनूजा मजदूरों का वकील। यूनियन का कारोबार ऐसा है कि मजदूर अगर कोई समस्या लेकर जाते हैं, तो वकील साहब कहते हैं कि कोर्ट केस कर दो। कोर्ट में दोनों खनूजा वकील भाइयों की सांठ-गांठ हो जाती है। दोनों भाई छानते-घोटते हैं। पिसते और मरते हैं मजदूर।

मजदूरों की हालत

बी.एन.सी. मिल में 350 महिलाएं काम करती हैं। वहां सुपरवाइज़र का बहुत आतंक है, वह पेशाब जाती हुई महिला मजदूरों का भी पीछा करता है। मजदूर वहां कुछ बोल नहीं सकते। जो अपनी बदतर हालत के खिलाफ आवाज उठाता है उसे चार्जशीट दे दी जाती है। इस तरह मैनेजमेंट करीब 200 ईमानदार मजदूर मुखियाओं की नौकरी खा गया। यहां आज भी मजदूरों का बेसिक वेतन सिर्फ 26 रुपये प्रतिमाह है यानी एक रुपये रोज से भी कम।

टेरीकाट और टेरीलीन आने के बाद सूती कपड़े ने भारी मार खाई। यह कमजोर और बीमार (बी.एन.सी.) मिल सन् 1974 में नेशनल टेक्सटाइल कार्पोरेशन (एन.टी.सी.) के अतंर्गत आई। इन सरकारी नौकरशाहों ने बहुत गोलमाल किया। ये कपास में हेरा-फेरी करते हैं। खराब कपास

सप्लाई करते हैं जिससे सूत अधिक टूटता है। इधर सूत बार-बार टूटता है उधर सुपरवाइज़र मशीन की गति इतनी बढ़ा देता है कि मजदूर हलकान हो जाए। पुरानी मशीन में मजदूर दो साइड में काम करते थे। अब नई मशीन में उनको चार सा़इड में काम करना पड़ता है।

दल्ली राजहरा की खदानों में किसी मजदूर को चोट लग जाने से तुरंत 'इंजुरी फार्म' भराया जाता है, परंतु बी.एन.सी. मिल में यदि किसी मजदूर की उंगली कट जाए तो सेफ्टी मैनेजर कहता है कि एक छोटी-सी उंगली कटने पर 'इंजुरी फार्म' भराने के लिए आ गए? जाओ, हाथ-पैर काटकर आना, तब 'इंजुरी फार्म' भरेंगे। यह कहकर मजदूरों को भगाया जाता है।

फैक्ट्री एक्ट का सरेआम उल्लंघन होता है। फैक्ट्री में सूत भाप देकर बनाया जाता है। वहां तापमान 110-115 डिग्री फैरनहाइट तक हो जाता है, एकदम धमन भट्टी की तरह। कपड़े खाते में मजदूर पानी से भीगकर काम करते हैं जिससे उनके पैर गीले होकर सफेद पड़ जाते हैं। एन.टी.सी. के मध्य प्रदेश में सात कारखाने हैं। फिर अगर मालिक एक, तो राजनांदगांव में इंदौर से कम वेतनमान क्यों? पहले 5,500 मजदूर थे और रोजाना उत्पादन 55,000 मीटर कपड़ा। अब 4,700 मजदूर रह गए हैं परंतु उत्पादन 65,000 मीटर हो गया है। यहां इंक्रीमेंट, प्रमोशन कुछ नहीं। एक ही ग्रेड में खटो और रिटायर हो जाओ। टेम्परेरी मजदूर ज्यादा और परमानेंट मजदूर कम हैं। अगर कोई मजदूर न आए तो उसका काम बदली मजदूर से कराया जाता है। बदली मजदूर को ग्रेच्युइटी नहीं और परमानेंट होने का भी कोई चांस नहीं। और बदली मजदूर की जगह कैजुअल मजदूर, जिसको छुट्टी की कोई सुविधा नहीं।

इंटक के 200 पालतू गुंडे हैं। इनका काम है लाठी चलाना, कुश्ती करना और मजदूरों को दादागिरी के बल पर दबाकर रखना। यह सभी लठैत उत्तर प्रदेश से लाए गए थे मजदूरों की मारपीट करने के लिए। आम मजदूर इन गुंडों को 'परदेसिया' बोलते हैं और इनसे घृणा करते हैं। परदेसिया लोगों को मिल के अंदर क्वार्टर मिले हैं जिसका मासिक किराया केवल 30 पैसा है। ये भैंसों का धंधा और सूद पर पैसा देकर

महाजनी करते हैं। हड़ताली मजदूरों के साथ मारपीट कर उनके हाथ-पैर तोड़ना ही इनका काम है।

'भागीदारी योजना'

बी.एन.सी. मिल में चार यूनियनें हैं, पर मजदूरों की कोई सुनवाई नहीं है। उसी समय 'भागीदारी योजना' चालू हुई। भागीदारी कमेटी में इंटक के 200 पदाधिकारी घुसाए गए जो खाली घूमते रहते थे। इनका काम भी मजदूरों को करना पड़ता था। मजदूर त्रस्त होकर खुद-ब-खुद हड़ताल में उतर गए। पालतू गुंडों ने मजदूरों के साथ भयंकर मारपीट की। पुलिस ने गुंडों को संरक्षण दिया। मजदूरों पर झूठे केस बने। गुंडे छोड़ दिए गए।

उसके बाद बी.एन.सी. मिल के मजदूर दल्ली राजहरा में हमारे पास आए। उन्होंने लाल-हरे झंडे की राजनीति को समझा और दल्ली राजहरा के मजदूरों के संघर्ष और कुर्बानी की कहानी सुनी। वहां के मजदूरों ने निर्णय लिया कि उनको लाल-हरा झंडा की ही यूनियन बनानी है। हमने उन्हें बहुत समझाया कि हमारे पास अभी बाहर जाकर काम करने का समय नहीं है। हमारे जाने से तो तत्काल मांग पूरी नहीं हो सकती। यह तो नहीं हो सकता कि जादू का डंडा घूमायें और मांग पूरी हो जाए। हमारी यूनियन के जाने से वहां पर बहुत आंदोलन करना पड़ेगा। बहुत कुर्बानी देनी पड़ेगी, लाठी खानी पड़ेगी एवं लंबी हड़ताल होगी। शुरू में दल्ली राजहरा के मजदूरों ने हड़ताल की, लाठी खाई, गोली खाई, जिससे ग्यारह मजदूर साथी शहीद हो गए। धारा 144 लगी, कर्फ्यु लगा, ये सब तकलीफ सहन करनी पड़ी, तब कहीं जाकर संगठन बना और इज्जत बनी। इस प्रकार हमारे साथ वहां पर कई प्रकार की विपत्ति झेलनी पड़ेगी - तो बताओ मंजूर है? नहीं तो, लाल-हरा झंडा राजनांदगांव में नहीं गड़ाएंगे। वे बोले कि आप जो भी रास्ता बताएंगे, हम चलने को तैयार हैं।

यूनियन के रजिस्ट्रेशन के बाद मिल में खलबली मच गई। अब पहले वाली स्थिति भी खत्म हो गई। मजदूरों को बेरहमी से तंग करना शुरू

हो गया। मिल के अंदर तापमान 110-120 डिग्री फैरनहाइट तक बढ़ा दिया गया। भाप भी बढ़ा दी गई। यूनियन के नाम से जो चिट्ठी मैनेजमेंट को दी जाती थी, उसे फाड़कर फेंक दिया जाता था। कहते थे, इंदौर में रजिस्ट्रेशन कराए हो, उन्हीं से जाकर बातचीत करो।

पहला घेराव

13 जुलाई 1984 की बात है। तरासन खाते में बहुत अधिक गर्मी थी। एक महिला बेहोश होकर गिर गई। उसको अस्पताल पहुंचाने के लिए कोई एम्बुलेंस नहीं थी। एक माह में वहां पर 3-4 महिलाएं बेहोश हो चुकी थीं। मजदूर आकर फैक्ट्री मैनेजर से बोले कि इतनी गर्मी में काम कैसे होगा। मैनेजर ने मजदूरों को नौकरी से निकाल देने की धमकी दी। तब मजदूरों को गुस्सा आया और उन्होंने मैनेजर का घेराव कर दिया। इसके बाद वहां संड-मुसंड पहलवान आ गए और मजदूरों के साथ धक्का-मुक्की करने लगे। मजदूर भी उनको थोड़ी दवाई दिए। मैनेजर भी अधिक गर्मी की बात को मान गए और अधिक भाप का दोष सुपरवाइज़र पर मढ़ने लगे।

इसके बाद मजदूरों ने एक मांग और रखी कि इस शांतिपूर्ण धरने से किसी की नौकरी नहीं जानी चाहिए। इसके बाद वहां पर नए कलेक्टर मिंज और एस.पी. पेंडारकर अचानक आ पहुंचे। इंसपेक्टर त्रिपाठी जो सन् 1977 के गोलीकांड के समय दल्ली राजहरा में था, वह भी वहां आ पहुंचा। उसके कंधे पर अब दो की बजाय तीन फूल लग गए हैं। ये सब मिल कर फैक्ट्री मैनेजर को बोले कि तुम मजदूरों को कुछ भी लिखकर मत दो। ये लोग लाल-हरा झंडा पकड़े हैं, तो इनको थोड़ा सबक सिखाओ। इनको सस्पेंड करो, नौकरी से निकालो। इस प्रकार की वहां जिला प्रशासन की नीति है।

पुलिस ने रात दो बजे मजदूरों पर लाठीचार्ज किया, इतना भयंकर लाठीचार्ज कि करीब एक हजार मजदूर घायल हुए, जिसमें 75 गंभीर रूप से घायल हुए। उन्हें धारा 151 के तहत जेल भेज दिया गया।

संगठन कैसे बना

14 जुलाई 1984 को मिल मजदूर दल्ली राजहरा आए। हम लोग सोच रहे थे कि वहां पर गोली चली होगी। शाम को हम दल्ली राजहरा से निकले और राजनांदगांव जाकर बैठ गए। वहां बहुत आतंक था। परदेसिए मजदूरों से मारपीट कर रहे थे। दल्ली राजहरा के कार्यकर्त्ताओं ने प्रत्येक मोहल्ले में मीटिंग करना और संगठन बनाना शुरू किया। मोहल्ले के अंदर बी. एन. सी. के मजदूर ही नहीं, दीगर मजदूरों को भी संगठन में जोड़ा गया। क्योंकि यह लड़ाई बी. एन. सी. मिल की ही नहीं, अर्चना फैक्ट्री की ही नहीं, ईंट भट्ठे की ही नहीं, ठेका मजदूर की ही नहीं, बल्कि सभी मजदूरों की लड़ाई है। यह पुरुषों की ही नहीं, महिलाओं की भी लड़ाई है। दल्ली राजहरा की अमरबाई, दुर्गाबाई, लीलाबाई और भी बहिनी लोग गईं। इन्होंने महिलाओं की मीटिंग करके समझाया तो उनमें बहुत बड़ी शक्ति पैदा हुई। लाल-हरा झंडा जन आधार पर खड़ा हुआ।

सोचा था कि मांग पूरी होने के बाद तत्काल मजदूरों का एक जुलूस निकालेंगे, पर डर था कि परदेसिया लोगों के पास बम, फटाके, पिस्तौल हैं, कहीं हमला न कर दें। इसके बारे में पुलिस एस. पी., कलेक्टर, अर्जुनसिंह, इंदिरा गांधी सबको लिखा था। परंतु पुलिस ने कुछ नहीं किया। उनका सोचना था कि मजदूर लोग जुलूस निकालेंगे तो उस पर गुंडे लोग हमला कर देंगे, जिससे पुलिस को लाठी चार्ज करने का मौका मिल जाएगा। लाठी चार्ज करेंगे कि मजदूर हिंसात्मक कार्रवाई कर रहे थे। इस तरह उन्हें गोली भी चलाने का मौका मिल जाएगा। हम शुरू में इसीलिए जुलूस निकालने के पक्ष में नहीं थे। मुखियाओं के साथ भी झगड़ा करना पड़ा क्योंकि वे जुलूस निकालना चाहते थे। हम बोले कि पहले संगठन बनाओ, अगर जुलूस निकालना है तो मोहल्ले के अंदर निकालो। इस प्रकार महिलाओं का जुलूस निकाला, बच्चों का भी जुलूस निकाला और 108 गांवों के अंदर संगठन तैयार हो गया। यहां तक कि 7-8 साल का बच्चा भी वहां पर नारा लगाता है, 'लाल-हरा झंडा जिंदाबाद', 'शहीद साथी अमर रहें'। इस प्रकार से वहां संगठन बना।

31 अगस्त 1984 को राजनादगांव बंद करने का मजदूरों ने आह्वान किया है। इस वजह से पुलिस जगह-जगह मजदूरों को मारपीट रही है और झूठे केस बनाकर उन्हें फंसा रही है। दल्ली राजहरा का मजदूर साथी फागूराम वहां के मजदूरों को कुछ गीत सुनाने गया था। उस पर भी झूठा केस बनाकर उसे जेल में बंद कर दिया। आसपास के किसान पूरी तरह से मदद कर रहे हैं। जेल से लोगों को जमानत पर छुड़ा रहे हैं। पुलिस प्रसाशन सब काम छोड़कर मजदूरों के पीछे पड़ गया।

राजनांदगांव का आंदोलन बहुत वृहत रूप से चलेगा, जिसमें किसी की जान भी ज़ा सकती है।

मुंबई के मिल मजदूर आंदोलन से बी. एन. सी. मिल का आंदोलन कुछ अलग तरीके से चल रहा है। यहां पर महिलाओं एवं बच्चों का लगातार संघर्ष जारी है एवं किसानों का पूरी तरह से समर्थन प्राप्त है। दल्ली राजहरा के मजदूरों को अच्छी तरह समझना पड़ेगा कि राजनांदगांव का आंदोलन जब तक चले, जी-जान देकर मदद करना होगा। राजनांदगांव के मजदूर आंदोलन को विजय की मंजिल तक पहुंचाना है। दलाल नेता केवल एक नारा देते हैं - 'नियोगी भगाओ'। क्योंकि उन्हें मालूम है कि अब उनकी काला बाजारी नहीं चलेगी। बी. एन. सी. मिल मजदूरों की विजय सुनिश्चित है। दल्ली राजहरा के मजदूर एक-एक मुट्ठी चावल देकर मदद कर रहे हैं। दल्ली राजहरा के संगठन को और मजबूत करना होगा। सन् 1977 में दल्ली राजहरा के 11 साथी शहीद हुए थे, लेकिन ज़रूरत पड़ेगी तो बी. एन. सी. मिल के आंदोलन में 22 साथी शहीद होने को तैयार हैं।■

'इंकलाब जिंदाबाद! '

लाल-हरे झंडे के संगठन[27]

प्रस्तुति - हरि जोशी व
अनिल सद्गोपाल[28]

छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा (छमुमो) की स्थापना छत्तीसगढ माईन्स श्रमिक संघ (सी.एम.एस.एस.) के गठन के लगभग दो वर्ष बाद सन् 1979 में हुई। यूनियन ने अपने प्रारंभिक काल में ही महसूस किया कि छत्तीसगढ के समग्र विकास के लिए किसानों को संगठित करना और गांवों को जागरूक बनाना आवश्यक होगा। इस समझ के आधार पर खदान मजदूरों की अगुवाई में छमुमो बना। यह छत्तीसगढ़ के किसान-मजदूर, छात्र-युवा, महिलाओं एवं अन्य शोषित-पीड़ित तबकों का स्वेच्छा से निर्मित संगठन है। इस मोर्चे की अगुवाई औद्योगिक सर्वहारा वर्ग करेगा। इसका लक्ष्य गुणात्मक रूप से छत्तीसगढ़ की जनता का आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास करना है और छत्तीसगढ़ भू-भाग में एक स्वावलंबी आर्थिक नीति के ज़रिए छत्तीसगढ़ी जनता में स्वाभिमान का बोध जागृत करना एवं एक शोषणविहिन समाज व्यवस्था की ओर बढ़ना है। गठन के कुछ ही समय बाद छमुमो ने तत्कालीन हालात को दृष्टिगत रखते हुए निम्नलिखित कार्यक्रम घोषित किए -

1. वर्तमान अकाल के परिणामस्वरूप उत्पन्न परिस्थितियों से पलायन करने के बजाय छत्तीसगढ़ के लोग जनसमूह में ब्लाक स्तर पर एक दिन एक साथ जमा हों और तब तक वापिस न जाएं जब

---

[27]छमुमो एवं उसके विभिन्न संगठनों द्वारा प्रसारित पुस्तिकाओं, पर्चों एवं अन्य सामग्री पर आधारित। (मूल पुस्तक से उद्धरित पृष्ठ संख्या : 374-383.)

[28]**हरि जोशी** - युवा समाजकर्मी; पूर्व में जिला होशंगाबाद (म.प्र.) 'किशोर भारती' संस्था के कार्यकर्त्ता, जिला बैतूल (म.प्र.) के घोड़ाडोगरी विकासखंड में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के तहत कार्यक्रम प्रभारी, संप्रति - भोपाल मे विभिन्न सामाजिक कार्यो में सक्रिय।

डॉ. अनिल सद्गोपाल - 'संघर्ष और निर्माण' पुस्तक के सह-संपादक; वैज्ञानिक व शिक्षाविद्; 'किशोर भारती' संस्था (ज़िला होशंगाबाद, म. प्र.) में ग्रामीण विकास व शिक्षा का काम (1971-92); विगत 25 सालों से शिक्षा पर नवउदारवादी व सांप्रदायिक हमलों के खिलाफ़ और समान शिक्षा व्यवस्था के पक्ष मे राष्ट्रव्यापी अभियान, पूर्व डीन, शिक्षा संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय; संप्रति - सदस्य, अध्यक्ष मंडल, अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच।

तक सरकार की ओर से उन्हें काम की व्यावहारिक गारंटी नहीं दी जाती।

2. उद्योगपतियों को बाध्य किया जाए कि वे अपने-अपने उद्योगों से होने वाले लाभ का एक निश्चित हिस्सा संबंधित जिले में सिंचाई एवं पेयजल उपलब्ध कराने पर खर्च करें। इंकार करने पर उद्योग की घेराबंदी की जाए।
3. ठेकेदारी मजदूरों, असंगठित मजदूरों, बीड़ी मजदूरों, पत्थर तोड़ने और जंगल में कार्यरत मजदूरों को संगठित क्षेत्र के मजदूरों का दर्जा देने का आंदोलन पूरे छत्तीसगढ़ में एक साथ चलाया जाए।
4. सांप्रदायिकता, जातिवाद एवं पृथकतावाद के खिलाफ हर स्तर पर आंदोलन किया जाए।
5. सामाजिक बुराइयों, शराबखोरी, महिलाओं का निर्यात एवं जुआ-सट्टा इत्यादि के खिलाफ हर स्तर पर आंदोलन किया जाए।
6. छत्तीसगढ़ी भाषा में गांव स्तर पर शिक्षा का काम शुरू किया जाए एवं गोंडी, हल्बी व छत्तीसगढ़ की अन्य बोलियों की रक्षा व विकास के लिए कदम उठाए जाएं।
7. जंगल के उत्पादन में लाख, चिरौंजी, साल, बीजा, कुसुम, करंज, कोसा आदि के उत्पादन का उचित मूल्य देने के लिए सरकार एवं व्यवसायियों को बाध्य किया जाए।
8. जंगल एवं कृषि उत्पादन पर आधारित उद्योग लगाने के लिए सरकार एवं उद्योगपतियों को आंदोलन के ज़रिए बाध्य किया जाए।
9. शराब की जायज एवं नाजायज भट्ठियों को समाप्त किया जाए।
10. आदिवासी क्षेत्र में वन विभाग के कर्मचारियों एवं अधिकारियों द्वारा शोषण एवं अत्याचार का सक्रिय रूप से विरोध किया जाए।
11. चूंकि साहूकार एवं ठेकेदारों द्वारा गरीब किसानों की जमीनों को हड़पा गया है, इसलिए इन वर्गों को एक इंच भी जमीन रखने का नैतिक अधिकार नहीं है। इन जमीनों को क्षेत्र के गरीब मजदूर-किसान अपने कब्जे में लें।

12. छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा की ओर से ग्रामीण विकास में रचनात्मक प्रयोग किए जाएं।
13. कोरंडम एवं टिन की तस्करी और निर्यात पर तुरंत रोक लगाई जाए।
14. तेंदू पत्ता की तुड़ाई, चुनाई करने वाले मजदूरों को न्यूनतम वेतन दिलाने के लिए संगठित किया जाए।
15. छत्तीसगढ़ क्षेत्र में वैकल्पिक कृषि, जैसे कपास, गन्ना आदि की खेती बढ़ाई जाए।
16. मशीनीकरण का विरोध कर श्रम-आधारित उद्योगों की स्थापना की जाए।
17. 'नवां अंजोर' सांस्कृतिक मंडली की गांव-गांव में शाखा खोली जाए, जिससे परंपरागत संस्कृति की रक्षा और विकास हो सके और मुंबइया फिल्मी संस्कृति पर अंकुश लगे।
18. हर गांव में पीने के पानी के प्रबंध हेतु सरकार पर दबाव डाला जाए।
19. क्षय रोग (टी.बी.) और कुष्ठ रोग के बारे में सही आंकड़े संकलित किए जाएं एवं इनके रोगियों को सरकार के द्वारा उपचार हेतु संगठित किया जाए।
20. इन तमाम रचनात्मक कार्यों को अमल में लाने के लिए मुक्ति सेना का गठन किया जाए।

उपरोक्त कार्यक्रम समय-समय पर देश के राजनीतिक हालात और क्षेत्र की सामाजिक ज़रूरतों व जन आकांक्षाओं के अनुसार विकसित होता रहा है और बदलता रहा है।

हालांकि छमुमो की शुरूआत सी.एम.एस.एस. की पहल पर हुई, किंतु आज छमुमो कई प्रकार के जनवादी संगठनों के लिए व्यापक बैनर बन गया है, (अब सी.एम.एस.एस. की गिनती भी इन्हीं में होती है) इन संगठनों में ट्रेड यूनियनों ने प्रमुख भूमिका निभाई है। यहां पहले हम छमुमो के बैनर में कार्यरत विभिन्न ट्रेड यूनियनों और छमुमो के अन्य संगठनों का विवरण देंगे, फिर अन्य प्रकार के संगठनों का।

स्वास्थ्य विभाग; 6. खेलकूद विभाग; 7. नशाबंदी विभाग; 8. संस्कृति विभाग; 9. मोहल्ला सुधार विभाग; 10. महिला विभाग; 11. मेस विभाग; 12. कानून विभाग; 13. पुस्तकालय विभाग; 14. पर्चा वितरण विभाग; 15. वालंटियर विभाग; 16. फाल बैक वेज़ेस विभाग और 17. भवन निर्माण विभाग।

आज सी.एम.एस.एस. के नेतृत्व में दल्ली राजहरा सहित हिर्री, बाराद्वार, दानीटोला, नंदिनी, चांदीडोंगरी आदि खदानों के लगभग 9,000 श्रमिकों ने अपने जीने लायक वेतन व अन्य कानूनी प्रावधानों को लागू करवाया है और मशीनीकरण द्वारा छंटनी करने की नीति के विकल्प के लिए संघर्ष किया है। 'संघर्ष और निर्माण' की राजनीति की शुरूआत भी इसी यूनियन ने की।

2. राजनांदगांव कपड़ा मजदूर संघ (आर.के.एम.एस.)

इसकी स्थापना 8 जुलाई 1984 को हुई। सी.एम.एस.एस. के बाद यह दूसरी बड़ी यूनियन राजहरा के बाहर बनी। इसके नेतृत्व में बी.एन.सी. मिल्स (बंगाल-नागपुर कॉटन मिल्स, राजनांदगांव) के मजदूरों ने बेहतर कार्य दशाएं, वेतन आदि के लिए जोरदार संघर्ष किया।

3. प्रगतिशील इंजीनियरिंग श्रमिक संघ (पी.ई.एस.एस.) का गठन सितंबर-अक्तूबर 1990 में शुरू हुआ, किंतु इसका पंजीयन 1 अक्तूबर 1991 को हुआ। इसके नेतृत्व में सिम्प्लेक्स, बीके, बी.ई.सी., खेतावत आदि इंजीनियरिंग उद्योग समूहों की भिलाई, उरला व टेडेसरा क्षेत्रों की इकाइयों में कार्यरत करीब 6,000 मजदूर संगठित हुए और भिलाई के वर्तमान आंदोलन की अगुवाई कर रहे हैं।

4. छत्तीसगढ़ केमिकल मिल मजदूर संघ (सी.सी.एम.एम.एस.) का गठन सन् 1984 में राजनांदगांव की राजाराम मेज़ फैक्ट्री (ग्लूकोज़ फैक्ट्री) के मजदूरों को लेकर हुआ। फिर जुलाई-अगस्त 1990 में भिलाई आंदोलन का जो उभार आया, उसमें यह ट्रेड यूनियन कई रसायन-आधारित उद्योगों में फैल गई। आज इसके तहत छत्तीसगढ़ डिस्टिलरीज़

लि. (कुम्हारी), केड़िया डिस्टिलरीज़ लि. (भिलाई) एवं भिलाई के पुंजस्टार, गोलछा केमिकल्स, के. एन. ऑयल मिल, ज्योति मिनरल्स आदि उद्योगों के लगभग 3,000 मजदूर संगठित हुए हैं।

5. **प्रगतिशील सीमेंट श्रमिक संघ** (पी.सी.एस.एस.) की शुरूआत ए.सी.सी. के जामुल सीमेंट वर्क्स (भिलाई) में मार्च-जुलाई 1990 के दौरान चले संघर्ष से हुई (पंजीयन - जून 1990)। लगभग 3,000 श्रमिकों ने मान्यता-प्राप्त इंटक यूनियन को छोड़कर इसकी बुनियाद डाली। बाद में बालोद बाजार (जिला रायपुर) के मोदी सीमेंट लि. के 800 मजदूर भी इसमें शामिल हो गए।

6. **छत्तीसगढ़ श्रमिक संघ** (सी.एस.एस.) की शुरूआत अस्सी के दशक में भिलाई स्टील प्लांट (बी.एस.पी.) के 'स्लैग' डम्प में लौह पिंडों को काटने और ढोने वाले ठेका मजदूरों को संगठित करके हुई, बाद में बी.एस.पी. के अन्य मजदूर भी जुड़े। इसके तहत लगभग 2,000 मजदूर संगठित हैं।

7. **प्रगतिशील ट्रांसपोर्ट श्रमिक संघ,** बी.एस.पी. से ए.सी.सी. की सीमेंट फैक्ट्री तक 'स्लैग' ढोने वाले ट्रकों के ड्राइवरों व हेल्परों का संगठन है जिसका गठन सन् 1988 में हुआ था। इसके नेतृत्व में ड्राइवरों व हेल्परों ने अपने हकों के लिए संघर्ष करके सन् 1989 के शुरू में विजय भी हासिल की और फिर भिलाई आंदोलन खड़ा करने में उल्लेखनीय प्रारंभिक भूमिका निभाई।

8. **छत्तीसगढ़ ग्रामीण श्रमिक संघ** का गठन सन् 1982 में बालोद और आसपास के ग्रामीण मजदूरों को संगठित करके हुआ। बाद में उच्चतम न्यायालय के आदेशों से रायपुर जिले के लगभग 4,000 मुक्त हुए बंधुआ मजदूरों ने इसी के नेतृत्व में संगठित होकर अपने को पुनः गुलामी की गर्त में जाने से रोका। आज इस संगठन का प्रमुख प्रभाव क्षेत्र रायपुर जिले के बसना, सरायपाली, पिथौरा और महासमुंद इलाकों में है।

छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा के अन्य संगठन

मार्च 1977 में मजदूरों द्वारा बोया गया लाल-हरे झंडे का बीज उनके खून-पसीने से सिंचित होते हुए एक नन्हें पौधे से बढ़कर 13-14 वर्षों में एक विशाल 'वट वृक्ष' बन गया है। आज इस वट वृक्ष की शाखाएं फैलकर जड़ें बन गई हैं जो इस वृक्ष के फलने-फूलने के लिए हर साधन जुटा रही है और छत्तीसगढ़ को छाया दे रही है। आइए, इनमें से कुछ शाखाओं को पहचानें -

1. **महिला मुक्ति मोर्चा** - सी.एम.एस.एस. के गठन की शुरूआत से ही महिला मजदूरों ने अग्रणी भूमिका निभाई है। बी.एस.पी. के एक वरिष्ठ इंजीनियर-प्रबंधक ने बताया कि सन् 1977 के शुरूआती दौर में जब यूनियन का पहला प्रतिनिधिमंडल खदान मैनेजमेंट से चर्चा हेतु पहुंचा तो उसमें दो महिलाओं को देखकर वे अचंभित रह गए। तब तक एटक-इंटक यूनियनों का प्रतिनिधित्व केवल पुरुषों ने ही किया था। कामरेड कुसुमबाई, जिनकी प्रसव के दौरान उचित इलाज न मिलने के कारण मृत्यु हो गई, स्वयं एक सशक्त संगठक थीं। जून 1977 को गोलीकांड में कामरेड अनुसुइया बाई शहीद हुईं। गोली चालन से पूर्व वे सबसे अगली पंक्ति में पुलिसवालों का सामना करते हुए क्रांतिकारी गीत सुना रहीं थीं। सन् 1978-80 के ऐतिहासिक शराबबंदी अभियान के दौरान भी महिलाओं ने अगुवाई की। कामरेड कुसुमबाई की मौत से विक्षुब्ध होकर मजदूरों ने एक प्रसूति गृह बनाने का संकल्प लिया जो बाद में शहीद अस्पताल बना। इस क्रांतिकारी पृष्ठभूमि में सन् 1979 के दौरान 'महिला मुक्ति मोर्चा' का गठन हुआ और मोर्चे ने अपनी निम्नलिखित दिशा तय की -

   क) महिलाओं के नेतृत्व को उभारना।

   ख) महिलाओं पर सामंती शोषण का विरोध करना।

   ग) अन्य शोषित तबकों की लड़ाई में साथ देना।

   घ) पूंजीवादी शोषण का विरोध करना।

   च) मजदूर वर्ग मे नये मूल्यों के लिए लड़ाई जारी रखना।

आज भी छमुमो के हर कार्यक्रम में महिलाओं को जोड़ने का काम यह मोर्चा करता है और अलग से विशेष कार्यक्रम भी उठाता है।

2. **नवां अंजोर** - छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक पहचान बनाए रखने और उसके विकास की भावना को साकार करने के लिए सन् 1981 में यह सांस्कृतिक दल बना जिसने गीत लिखने, नाटक रचने-खेलने आदि महत्वपूर्ण योगदान दिए। इसी के तहत मजदूर साथी श्री फागूराम यादव द्वारा गीत रचे गए तो अब लोकगीत बनते जा रहे हैं। यह दल 1986 तक सक्रिय रहा।[29]

3. **छत्तीसगढ़ प्रगतिशील युवा संघ** - इसका गठन 1988 में हुआ। तब इसने निम्नलिखित घोषणापत्र जारी किया -

घोषणा

आजादी और खुशहाली लाने की उमंग लिए, नौजवान समाज परिवर्तन की लड़ाई में अगुवा दस्ता है। छत्तीसगढ़ प्रगतिशील युवा संघ, छत्तीसगढ़ के तमाम नौजवानों का आह्वान करता है कि वे शोषण व अत्याचार के खिलाफ संघर्ष में सक्रिय रूप से भाग लें।

नौजवानों में अपार सृजन शक्ति है। उन्हें राष्ट्रीय आंदोलन से परे नहीं रखना चाहिए। देश के निर्माण में उनकी भूमिका को पहचानते हुए हम उन्हें जनता व देश हित के लिए संगठित व गोलबंद करने की जिम्मेदारी लेते हैं।

उद्देश्य व लक्ष्य

- पूरे छत्तीसगढ़ के नौजवानों की एकता व संगठन कायम कर प्रगति व खुशहाली के लिए आंदोलन करना।
- नौजवानों के अधिकारों व इज्जत के लिए संघर्ष करना।
- तानाशाही व सामंती व्यवस्था के खिलाफ जनवादी अधिकारों के लिए लड़ना।
- सामाजिक कार्यों के लिए नौजवानों को संगठित करना।

---

[29] 19 दिसंबर 1992 से यह दल पुनः सक्रिय हो गया है।

- शोषण के खिलाफ, सामाजिक न्याय के लिए काम करना। जाति, भाषा, धर्म व रंग के भेदभाव के खिलाफ मानवीय रिश्तों को कायम करना। रंगभेद की नीति का विरोध कर नेल्सन मंडेला की रिहाई की मांग करना।
- आज के समाज में व्याप्त अपसंस्कृति, महिलाओं के अपमान आदि के खिलाफ संघर्ष कर एक स्वस्थ समाजवादी संस्कृति एवं पुरुषों व महिलाओं में समानता और भाईचारा के लिए प्रयासरत रहना।
- सामंती, अर्द्ध-सामंती व दलाल-पूंजीपति व्यवस्था के खिलाफ, जनवाद एवं समाजवादी व्यवस्था के लिए संघर्ष करना।
- किसान-मजदूर व मध्यम वर्ग के साथ एकता बनाना व उनके संघर्ष में कंधे-से-कंधा मिलाकर चलना।
- भारत के विभिन्न हिस्सों, उपराष्ट्रीय समूहों जैसे उत्तराखंड व झारखंड की जनता के लिए जनवादी संघर्षों एवं देश के विभिन्न मजदूर-किसानों के आंदोलन के साथ एकता व भाईचारा कायम करना।
- स्वस्थ पर्यावरण का निर्माण करना और नाभिकीय व हर प्रकार के पूंजीवादी युद्ध की खिलाफत करना।

मूल रूप से, एक शोषणविहीन, असीम सुख-शांति की समाज व्यवस्था स्थापित करना हमारा लक्ष्य है।

4. **छत्तीसगढ़ स्टूडेन्ट्स फ़ेडरेशन** - युवकों के साथ-साथ छात्रों के बीच काम करने के लिए इसका गठन सन् 1988 में किया गया। इसका कार्यक्रम -

1. पूरे छत्तीसगढ़ के छात्र-छात्राओं को संगठित कर नए छत्तीसगढ़ के निर्माण के लिए आंदोलन करना।
2. हम वर्तमान गलत शिक्षा नीति के खिलाफ संघर्ष करेंगे। हम संघर्ष करेंगे,

क) गांव व शहर की शिक्षा सुविधाओं में समानता लाने के लिए,

ख) तकनीकी ज्ञान देने वाली एवं आत्मनिर्भर इंसान बनाने वाली शिक्षा प्रणाली की स्थापना के लिए,

ग) जनोपयोगी शिक्षा व्यवस्था लागू करने के लिए,

घ) शिक्षा के क्षेत्र में भ्रष्टाचार को रोकने के लिए,

च) अपसंस्कृति और अंधविश्वास के खिलाफ, ढिसुम-ढिसुम, कराटे, कुफूं व यौनिक संस्कृति के खिलाफ, नई जनवादी संस्कृति के निर्माण के लिए।

जिन क्रांतिकारियों ने नये भारत के निर्माण के सपनों को लेकर हमें बलिदान की भावना से प्रेरित किया है, उनके जीवन व कर्म से शिक्षा लेते हुए हम उनके अधूरे सपनों को सफलता की मंजिल तक पहुंचाने वाली प्रेरणामूलक शिक्षा पद्धति का कार्यक्रम प्रस्तुत करेंगे।

5. **लोक साहित्य परिषद** - इसकी स्थापना 3 जून 1990 को हुई। मजदूर-किसानों को सरल भाषा एवं कुछ हद तक स्थानीय भाषा में छोटी-छोटी पुस्तिकाओं के माध्यम से संघर्षों, विचारों और रचनात्मक कार्यक्रमों की जानकारी परिषद् पहुंचा रही है। इसके पहले सी. एम. एस. एस., छमुमो आदि स्वयं आंदोलन की सामग्री प्रकाशित करते रहे हैं। लोक साहित्य परिषद् के गठन के बाद से इस काम में गति व स्थायित्व आया है।

6. **शहीद अस्पताल** - सन् 1981 के 'स्वास्थ्य के लिए संघर्ष करो' आंदोलन की शुरूआत में मजदूरों के मन में जिस 'प्रसूति गृह' की कल्पना थी, वह अंततः 3 जून 1983 को शहीद अस्पताल के रूप में सामने आई। यह अस्पताल आज प्रगति पर है। . . . इसके संचालन की पूरी जिम्मेदारी छमुमो के तहत अस्पताल के डाक्टर, नर्स एवं स्वारथयकर्मी मिलकर सामूहिक रूप से निभाते हैं।

7. **शहीद गैरेज एवं ट्रेनिंग सेंटर** - सन् 1982 में निजी गैरेज मालिकों के खिलाफ आंदोलन करने के कारण काम से निकाले गए युवा मेकेनिकों को एक विकल्प देने के लिए एक ट्रेनिंग सेंटर के रूप में इसकी शुरूआत की गई। इस गैरेज को जूनियर पॉलिटेक्निक बनाने का लक्ष्य यूनियन ने तय किया था, पर राज्य सरकार ने इस प्रस्ताव को मान्यता देने से इंकार कर दिया। बहरहाल, स्थानीय ज़रूरत का तकनीकी प्रशिक्षण यहां जारी है जिसमें से कई नौजवान प्रशिक्षित होकर रोजगार में लग गए हैं।

सहयोगी संगठन

लाल-हरे झंडे से प्रेरित होकर अन्य कई संगठन उभरे हैं जो सीधे छमुमो के तहत काम नहीं करते, किंतु अपने को छमुमो से जुड़ा हुआ मानते हैं। इनमें से कुछ ने छमुमो का लाल-हरा झंडा अपनाया है और छमुमो के साथ कार्यक्रमों के स्तर पर निकट का रिश्ता बनाकर रखा है। इनमें से उल्लेखनीय हैं -

1. खदान सहकारी समितियां

दल्ली राजहरा के खदान मजदूरों ने सत्तर के दशक की शुरूआत से ही अपनी अनेक सहकारी समितियां गठित की हैं जिनमें सात समितियां आज सी.एम.एस.एस. से सम्बद्ध हैं। इनके माध्यम से खदानों में रेज़िंग एवं ट्रांसपोर्ट का ठेका लिया जाता है। निजी ठेकेदार भी कार्यरत हैं। उनकी तुलना में ये सहकारी समितियां अपने मजदूर-सदस्यों को बेहतर सुविधाएं देती हैं। इनमें से एक समिति एक प्रायमरी स्कूल भी चलाती है।

2. प्रगतिशील ट्रक ओनर्स एसोसिएशन

यह दल्ली राजहरा की खदानों में अयस्क की ढुलाई कर रहे टिप्पर ट्रकों के छोटे-मोटे मालिकों (एक या दो ट्रक वाले) का संगठन है। प्रबंधन की पूर्ण मशीनीकरण की नीति से इन्हें भी खतरा था और बड़े खदान ठेकेदार भी अपने टिप्पर ट्रकों के बल पर इन

पर दबाव बनाकर रखते थे। अतः सन् 1985 में दल्ली राजहरा के सभी छोटे टिप्पर ट्रक मालिक (लगभग 100) छमुमो की प्रेरणा से संगठित हुए और इन दबावों का सामना करना शुरू किया। विगत वर्षों में इस संगठन ने खदान मजदूरों के विभिन्न संघर्षों के दौरान अपना समर्थन देकर और अपने वाहनों की सेवाएं अर्पित करके उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। सन् 1987 में एक दुर्घटना में कूल्हे की हड्डी में चोट लगने के कारण जब नियोगी के लिए यूनियन की जीप में सफर करना मेडिकल दृष्टि से असंभव हो गया था, तब इस एसोसिएशन ने विशेष चंदा करके उनके उपयोग के लिए एक फियेट कार भेंट की।

3. विदर्भ खदान मजदूर संघ

इसका पंजीयन नवंबर 1990 में हुआ। इसके तहत महाराष्ट्र के चंद्रपुर व गढ़चिरौली जिलों में लौह अयस्क की तीन खदानों के लगभग 750 मजदूर संगठित हुए। ये खदानें निजी ठेकेदारों/लीज़धारियों के द्वारा चलाई जाती हैं। अतः वहां के मजदूर जबर्दस्त शोषण का शिकार रहे हैं। परंतु सितंबर 1990 में श्रम कानूनों को लागू करवाने के लिए इस यूनियन ने कठिन लड़ाई के बाद एक समझौता करवाया है।

4. राष्ट्रीय खदान मजदूर संघ

यह मेघनगर (जिला झाबुआ, म. प्र.) के पास स्थित राज्य खनन निगम का रॉक फ़ास्फेट की खदानों के मजदूरों का संगठन है। दल्ली राजहरा से लगभग 1,000 कि. मी. दूर होने के बावजूद छमुमो के आंदोलन से प्रेरणा लेता रहा है। परंतु हांल के वर्षों में अन्यान्य कारणों से यह सक्रिय नहीं रहा है।■

जनता की सूझ-बूझ और उसका चित्रकार

-दुनू राय[30]

"दल्ली राजहरा में लौह अयस्क खोदा गया। भिलाई की भट्टियों में गलाकर उसे इस्पात बनाया गया। रायपुर के औद्योगिक क्षेत्र में इस्पात से उन मशीनों का निर्माण हुआ, जिन्होंने मजदूरों की छंटनी करवाई। जबलपुर में इस्पात से बंदूकें बनीं, जिन बंदूकों से मध्य प्रदेश की पुलिस ने छत्तीसगढ़ के इंकलाबी मजदूरों को चुन-चुन कर मारा। आज के समाज में शायद यही 'मेहनत का फल' है, यही 'विज्ञान का कमाल' है और शायद इसी को पहचानकर नियोगीजी ने छमुमो के साथियों को एक नया समाज बनाने के लिए प्रेरणा दी। . . . **एक ऐसा समाज जिसमें विज्ञान का इस्तेमाल जनता के हित में होता हो।** . . .

जिस तस्वीर को बनाने में नियोगीजी ने मदद की थी, उसका पहला हिस्सा इसी बात पर केंद्रित था कि आज ज्ञान का इस्तेमाल जनता के हित में नहीं हो रहा है। यही सोच सी.एम.एस.एस. की पहली लड़ाई की बुनियाद में भी था। जब ठेकेदारी प्रथा को चुनौती दी गई और खदान में काम करनेवाले हजारों लोगों को उनका उचित वेतन भी मिलने लगा, लेकिन कहीं यह वेतन जुआ और शराब में बहकर ठेकेदारों की जेब में वापिस न चला जाए! इसीलिए सी.एम.एस.एस. ने शराब-विरोधी आंदोलन भी चलाया और उस सूझ-बूझ का अंजाम यह हुआ कि घर-घर में भोजन, शिक्षा, और अच्छी ज़िंदगी पर पैसा खर्च होने लगा। क्या इस सूझ-बूझ के पीछे के सोच को 'विज्ञान' या 'जन विज्ञान' के नाम से नहीं पुकारा जा सकता?

लेकिन विज्ञान का इस्तेमाल आम तौर पर लोगों के भले के लिए क्यों नहीं किय जाता? खदानों में मशीनीकरण की चाल से तो साफ समझ में आता है कि इसके पीछे मालिकों का आर्थिक स्वार्थ है. .. । परंतु नियोगीजी की अगुवाई में **छमुमो को साथियों की यह भी समझ बनी कि मामला केवल आर्थिक नहीं है, उसके पीछे गहरी सामाजिक और राजनीतिक चाल भी है।** इस चाल का मूल मंत्र है कि मेहनतकश जनता को हर तरह से वश में रखा जाए। . . .

नियोगीजी की हत्या के बाद भी उनकी मदद से बनाई हुई तस्वीर ज़िंदा है। आज भी छमुमो के विभिन्न साथी अपने आंदोलन के साथ-साथ ज्ञान और विज्ञान की बातें उठाए जा रहे हैं। नए समाज को बनाने का एक हिस्सा नए सोच को स्थापित करने के साथ नज़दीकी से जुड़ा है। **यह नया सोच, यह जन विज्ञान, जन की सामूहिक सूझबूझ पर टिका है।** तस्वीर केवल नियोगीजी की नहीं थी, उसमें तमाम लोगों (बच्चों, महिलाओं, और पुरुषों) ने अपने-अपने रंग भरे हैं। इसलिए शायद तस्वीर हम सब की ही है।" ■

---

[30]विख्यात जन विज्ञानी एवं पर्यावरणविद्; पूर्व में जिला शहडोल (म.प्र.) के 'विदूषक कारखाना' नामक जन विज्ञानी समूह के संस्थापक-सदस्य; संप्रति : दिल्ली में शहरी विकास का जनपक्षी मॉडल विकसित करने के लिए प्रयासरत। (मूल पुस्तक से उद्धरित पृष्ठ संख्या : 535-536.)

"ट्रेड यूनियन मजदूरों का संगठन होता है। मजदूर वर्ग का वैज्ञानिक सिद्धांत उनको उस नए प्रकार की राजसत्ता कायम करने के लिए प्रेरित करता है, जो वर्तमान [पूंजीवादी] व्यवस्था की कब्र पर खड़ी की गई हो। **यह सिद्धांत पुराने को तोड़ने और नए का निर्माण करने का राजनीतिक सिद्धांत है**।. . .

. . . नेतृत्व को अपने वर्ग का सबसे अधिक वर्ग-चेतना से भरपूर अंश होना चाहिए।. . . [इसका] चार-सूत्री तरीका है - **वर्ग संघर्ष, उत्पादन संघर्ष, वैज्ञानिक प्रयोग और इतिहास का अध्ययन**। . . . वर्ग संघर्ष में निडरता से भाग लेना सही नेतृत्व की पहली कसौटी है उत्पादन संघर्ष। ऐसे कामचोर आदमी जिनको उत्पादन के काम में कोई दिलचस्पी नहीं, वह नेतृत्व करे लायक नहीं है। . . .

नेतृत्व तभी सही नीति का निर्धारण और कार्य पद्धति का उपयोग कर सकेगा, जब वह **साधारण परिस्थिति को विशेष परिस्थिति के साथ जोड़ सके**। . . . साधारण परिस्थिति की जानकारी, वैज्ञानिक प्रयोग और इतिहास की जानकारी के ज़रिए ही हो सकती है। सफल नेतृत्व की कसौटी है, साधारण परिस्थिति की पूर्ण जानकारी विशेष परिस्थिति में उस जानकारी को लागू करने की क्षमता।

आज की ट्रेड यूनियनें अर्थवाद से बुरी तरह ग्रस्त हैं। आर्थिक मांग के अलावा बाकी तमाम राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक सवालों को ताक पर रख दिया जाता है, तब इस प्रकार की नीति को अर्थवाद कहा जाता है। . . . इससे ट्रेड यूनियनों के जीवन की सजीवता समाप्त हो चुकी है. . . मजदूरों की ज़िंदगी के सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक पहलुओं में निराशाजनक कृत्रिमता लाकर उन पर पूंजीपतियों के राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विचारों को थोपा जा रहा है।"

"हमें अर्थवाद का अंधकार नहीं, आर्थिक संघर्ष के साथ-साथ मुक्ति का आलोक भी चाहिए, एक इज्ज़तदार मजदूर वर्ग की प्रतिष्ठा चाहिए, नई संस्कृति की शुद्ध हवा चाहिए, एक क्रंतिकारी ट्रेड यूनियन चाहिए।"

- शंकर गुहा नियोगी

(देखिए, पृ. क्र. 75, 80-81 एवं 85)

सहयोग राशि – पचपन रुपए मात्र